पठन सामग्री – 1

बच्चों के चित्रों का विकास–क्रम

"....बच्चा लकीरें इसलिए मारता है
कि वह अपनी आंतरिक
दुनिया को किसी सहानुभूतिपूर्ण
दर्शक को बता सके, अपने
मां–बाप के पास
अपने भाव प्रकट करे,
जिनसे वह संवेदना चाहता है।"

हर्बर्ट रीड

आमतौर पर एक गलती अक्सर होती है। बच्चे को बिना समझे–बूझे हम उसकी शिक्षा की योजना बनाते हैं। इसलिये जो चाहते हैं, वह नहीं बन पाता। हमें बच्चों को लेकर काम करना है। उन्हें कला–शिक्षा देनी है। कला–शिक्षा के उसूल तैयार करने के बाद यह कोशिश करें कि इन उसूलों को सामने रखकर ही सिखाना है और बच्चे के स्वगुण को ध्यान में न रखें, यानी बच्चे की प्रकृति और उसके स्वभाव का ध्यान न रखें, तो हम कहीं भी नहीं पहुंच सकेंगे।

यह जरूरी है कि कला–शिक्षा की पद्धति तैयार करने के पहले यह जान लें कि बच्चे के कला–गुण क्या हैं। हमें देख लेना है कि बच्चा जिस दुनिया में रहता है, वह हमारी दुनिया से निराली है। और इसलिए उसके चित्र भी बड़ों के चित्रों से निराले होते हैं। यह समझना होगा किस वह कि अवस्था में कैसा चित्र बनाता है।

इसके लिए बच्चों का और उनके कला–अनुभवों का बारीकी से अध्ययन करना होगा। हमारे देश में यह काम नही के बराबर हुआ है। विदेशों में तो इसे काफी बारीकी के साथ किया गया है। हमें वहां के अनेक विशेषज्ञों के अनुभव उपलब्ध है। हमारे अपने काम में हुए अनुभव बहुत उपयोगी और लाभप्रद सिद्ध हुए। साथ ही यह भी महसूस किया कि बच्चों के काम के नतीजे सब जगह करीब–करीब एक जैसे ही होते हैं। 'बच्चों की दुनिया' सब देशों में एक जैसी ही पाई जाती है।

हमने अपने निरीक्षण में यह देखने की कोशिश की कि बच्चा जिस समय से हाथ में पेंसिल पकड़ने के लायक हो जाता है, तब से लेकर अपने पूरे बचपन में अगर पूरा स्वतंत्र छोड़ दिया जाए, तो कैसे चित्र बनाएगा? यानी अगर एक, दो या तीन साल के बच्चे के हाथ में कागज, रंग आदि पड़ जाए, तो वह उससे किस तरह के चित्र बनायेगा? और अगर वह इसी तरह आगे भी बनाता रहे, तो कुछ दिनों बाद उसके चित्र कैसे बनेंगे? अर्थ यह है कि बच्चे को स्वतंत्र छोड़कर हमेशा चित्र बनाते रहने देने का मौका दिया जाए, तो उसके चित्रों में किस तरह का विकास होता रहेगा ?

हमने देखा कि बच्चे के चित्रों में क्रमशः परिवर्तन होता रहता है। उसकी अवस्थाएं बदलती रहती है। इसका कारण यह है कि बच्चा हर समय कुछ–न–कुछ नई बात ग्रहण करता रहता है। उसके हर अनुभव उसके विकास की अवस्था को थोड़ा–थोड़ा बदलते रहते हैं।

कला आत्म–प्रकटन है। कलाकार अपनी कला के जरिये अपने अंदर के अनुभव, विचार आदि को प्रकट करता है। जिस अनुभव या विचार को वह सोचता है कि दूसरों को भी देना चाहिए, वह अपनी कला के जरिए देने का प्रयत्न करता है। कुछ अनुभव वगैरह ऐसे होते हैं, जो स्वयं प्रकट हो जाते हैं। केवल कलाकार के अनुभव या

विचार ही प्रकटन नहीं पाते, बल्कि हर व्यक्ति अपने भीतरी व्यक्तित्व को किसी–न–किसी रूप में बाहर प्रकट करता है। बच्चे के लिए यह भी स्वाभाविक है कि जो कुछ उसे अनुभव हो, वह उसे दूसरों का बताए। बच्चे का और भी एक गुण है। वह है –कुछ न छिपाने का गुण। वह जो कहना चाहता है, कह देता है। कम उम्र में बच्चे की शब्दों की भाषा भी अविकसित रहती है। इसलिए कला ही उसके आत्म–प्रकटन का एक मुख्य साधन हो जाता है। उसके बनाए हुए चित्रों के द्वारा उसके भीतरी विकास का दर्शन होता और उसका स्वगुण हमें पता चल जाता है। इस निरीक्षण से पता चलेगा कि बच्चा किस प्रकार स्वाभाविक कला–विकास से गुजरता है।

पहले ही कहा गया है कि बच्चे के कला–विकास की अवस्थाएं हर समय बदलती रहती हैं। फिलहाल इन अवस्थाओं को बारीकी से न लेकर हम मुख्य–मुख्य अवस्थाओं का जिक्र करेंगे और बाद में इन 'अवस्थाओं की उप–अवस्थाओं के बारे में बारीकी से चर्चा करेंगे।

बच्चों के चित्रों के विकास–क्रम की मुख्य अवस्थाएं–

1. कीरम–कांटे
2. प्रतीक काल
3. वास्तविकता–परिचय काल
4. किशोर–अवस्था और उसके बाद

ये चार अवस्थाएं हैं, जो बच्चे के कला–अनुभव में आमतौर पर देखी जाती हैं। इनकी निश्चित उम्र कहना कठिन है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में और दूसरी अवस्था से तीसरी और चौथी अवस्था में बच्चा कब प्रवेश करेगा, यह निश्चित तौर पर कहा नहीं जा सकता; क्योंकि यह बच्चे के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। कोई बच्चा एक अवस्था में किसी उम्र में आता है और दूसरा किसी दूसरी उम्र में। यह भी नहीं कहा जा सकता कि एक अवस्था में रहने का समय सब बच्चों का एक जैसा ही होता है। हो सकता है कि एक बच्चा पहली अवस्था को कुछ हफ्तों में ही पार कर ले। कभी–कभी देखा गया है कि कुछ बच्चे महीनों तक, यहां तक कि सालो–साल तक पहली अवस्था में ही पड़े रहते हैं। इस विषय पर बारीकी से चर्चा करने से पहले इन चारों अवस्थाओं को थोड़ा–थोड़ा स्पष्ट कर दें।

कीरम–कांटे (गूदागादी) की अवस्था

बच्चा हाथ में पेंसिल पकड़ने लायक होने पर शुरू–शुरू में कागज पर लकीरें घसीटता है। ये लकीरें किसी वस्तुविशेष का चित्र नहीं होती। केवल साधन से परिचय और शारीरिक हलचल करना इस अवस्था में होता है। बच्चा बड़ों की तरह हाथ चलाने की कोशिश करता है (चित्र –संख्या 1 से 4)

प्रतीक–काल

हाथ चलाने की शुरूआत करने के बाद वह बाहर की दुनिया के आकारों से संबंध रखने वाले चित्र बनाना शुरू कर देता है। वह कुछ खास तरह के आकारों के द्वारा अपने अनुभवों को प्रकट करता है। ये आकार बच्चे के अपने अनुभव के द्वारा निर्मित, दिखनेवाली वस्तुओं के आकार होते हैं। किंतु वे वस्तु के वास्तविक आकार जैसे नहीं होते। इसमें बच्चा वस्तु को 'जैसा जानता है' या 'जैसा अनुभव करता है', वैसा चित्र बताता है; वस्तु 'जैसी दिखती है', वैसा नहीं। वह अपने मन में चीजों के 'प्रतीक' बना लेता है। उदाहरणार्थ, आदमी के चेहरे के लिए एक गोला और उसके अंदर तीन–चार छोटे–छोटे गोले (दो आंखें, एक नाक की लकीर या गोला और एक मुंह) यह उसका चेहरे का प्रतीक है इसी तरह हर चीज के प्रतीक नए–नए अनुभवों के आधार पर उसके दिमाग में बनते और बदलते रहते हैं। इस अवस्था के चित्र प्रतीक–प्रधान होते हैं और बच्चा अभी तक अंतर्मुखी होता है। (चित्र–संख्या 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14,16, 20, 21, 24, 31, 43, 44, 47, 50, और 55)

वास्तविकता–परिचय–काल (रिअलिज्म)

धीरे–धीरे ये प्रतीक भी बदलते हैं। एक चीज के बारे में जो आज अनुभव है, कल और अधिक हो सकता है और वह होता ही है। किसी वस्तु का कुछ हिस्सा आज अनुभव में आता है, तो कुछ और हिस्सा अगली बार नजर में पड़ता है। इस अनुभव का असर उस चीज के प्रतीक पर पड़ता है और वह विकसित होता है। उसमें कुछ और जुड़ जाता या बदल जाता है। उदाहरण के लिए, जैसे आदमी के चेहरे का पहला प्रतीक, जिसका जिक्र अभी किया उसमें आगे चलकर नाक भी आ जाती है और कुछ अनुभव के बाद कान, बाल वगैरह भी। यहां तक कि ये आकार के साथ तुलनात्मक दृष्टि से देखने लगता है। इस प्रक्रिया के कारण वह वास्तविकता के बारे में सज्ञान होता जाता है। इसमें उसके चाक्षुष अनुभव काम करते हैं और उसके चित्र वास्तविकता–प्रधान बनने लगते हैं। इसीलिए इस काल को 'वास्तविकता–परिचय–काल' कहा गया है (चित्र –संख्या 28, 29, 30, 31, 32, 41, 45, और 49)।

इस परिवर्तन का दूसरा कारण भी हो सकता है बच्चे का अभी तक का काल अंतर्मुखी था। यानी तब तक वह अपने अंदर ही वास करता है। बाहर की चीजों को भी इस समय अपना ही रूप और अर्थ देता है। यह अंतर्मुख (सब्जेक्टिव) हालत बाद में बदलती है और धीरे–धीरे बहिर्मुख होने लगती है। उसकी 'दुनिया' बदलने लगती है। वह बाहर की दुनिया के साथ अपना संबंध समझने लगता है। वह अपने–आप में से निकलना शुरू करता है। ऐसी अवस्था में उसका आत्म–प्रकटन भी बदलना चाहिए। बाह्म दुनिया की वास्तविकता का सामना करने के अनुभव से उसकी नजर भी वास्तविकता–प्रधान हो जाती है। उसकी वजह से उसके चित्र भी वास्तविक होने शुरू हो जाते हैं। इसकी चर्चा विस्तार से आगे चलकर करेंगे।

व्यक्ति के विकास की सीढ़ी को तय करना सिर्फ उसके व्यक्तिगत गुणों पर ही निर्भर नहीं होता और न केवल उसके व्यक्तिगत सामर्थ्य से ही यह तय कर सकते हैं कि उसका विकास अमुक प्रकार से होगा। व्यक्ति के विकास की सीढ़ी के बनाने में एक बड़ा हाथ समाज के ढांचे का भी होता है। समाज के विचारों और रुचि का असर व्यक्ति पर पड़ता है।

बच्चा हर काम को बड़ों की तरह करने की कोशिश करता है। वह कभी यह महसूस नहीं करता कि वह बड़ों जैसा नहीं है। जैसा बड़ों को करते देखता है, वैसा ही वह भी करना चाहता है। कला में भी यही बात लागू होती है। एक उम्र तक तो वह बड़ों से इतना अलग तरह का होता है कि वह अपनेपन को काफी हद तक रख पाता है। लेकिन जब बड़ा होता जाता है, तो यह बात बदलती जाती है।

आज ही नहीं, बल्कि काफी काल से कला में समाज की साधारण रुचि का झुकाव वास्तविकता की तरफ ही है। कुछ कलाकारों को और विशेषज्ञों को छोड़कर अधिकतर व्यक्ति ऐसी ही तसवीरें या मूर्ति पसंद करते हैं, जो वास्तविकता–प्रधान हों। घरों में, पुस्तकों में और सब जगह अधिकतर चित्र वास्तविक (रियलिस्टिक) ही रहते हैं। बच्चे अगर किसी को चित्र बनाते हुए भी देखते हैं तो वे भी अक्सर ऐसे ही चित्र बनानेवालों को देखते हैं, जो वास्तविक चित्र बनाते हों।

इसका असर यह होता है कि जब बच्चा कुछ सज्ञान होने लगता है, तो वह भी इसी प्रकार के चित्र बनाने की कोशिश करता है। उसके चित्र भी वास्तविक होने लगते हैं।

दूसरी बात यह है कि बच्चे की अपनी एक दुनिया अलग जरूर रहती है, लेकिन यह बात भूलने की नहीं है कि वह भी एक सामाजिक प्राणी है। वह कुछ अपने खुद के लिए करता है और कुछ अपने समाज के लिए भी। उसका यह पहलू, जो कि उसे दूसरों के लिए कुछ कराता है, यानी वह काम, जो वह 'दिखाने' के लिए करता है, उसे बड़ों जैसा करने में मदद करता है। इस कारण भी उसके चित्र एक उम्र आने पर वास्तविक होने लगते हैं।

ऐसी जगह, जहां कि समाज में अभी भी लोककला की परंपरा चली आ रही है और सचमुच समाज में उसका

आदर होता है, वहां व्यक्ति का कला–विकास कैसा होता है, यह बात अध्ययन करने योग्य है। आदिवासी समाज में देखें। उनकी अपनी रूचि होती है। उनकी चित्रकला की परपंरा वास्तविक चित्रकला से कहीं अलग तरह की होती है। उसमें सयानों का काम भी इस प्रयत्न से दूर होता है कि चित्र में वास्तविक आकारों का उपयोग हो। यही कारण है कि उस समाज में बच्चों के चित्र भी किशोर–अवस्था में वास्तविकता लाने का प्रयत्न होता है, वह स्वाभाविक नहीं है। वह तो समाज का असर है, क्योंकि अगर यह स्वाभाविक होता, तो आदिवासी बच्चा भी किशोर–अवस्था में आने पर इस वास्तविकता की तरफ झुकता, चाहे बाद में समाज की रुचि और परंपरा के कारण फिर प्रतीक–प्रधान चित्र बनाना शुरू करता। किंतु वहां, आदिवासी समाज में, ऐसा नहीं होता और बच्चे के अपने चित्र आलंकारिक व प्रतीक–प्रधान होते हैं। बच्चे के स्वाभाविक चित्र कैसे होते हैं, यह तब देखने को मिलता है, जब कि बच्चा चित्र 'अपने लिए' बना रहा हो, किसी को दिखाने के लिए नहीं। तब उसके अंदर की चीज प्रकट होती है और वह उसके लिए 'कलात्मक–लीला', (एस्थेटिकल एक्टिविटी) उसका निर्माणकारक खेल होता है, नकल की प्रवृत्ति नहीं।

किशोर–अवस्था और उसके बाद

बच्चे की किशोर–अवस्था शिक्षाशास्त्रियों और कला–शिक्षकों के लिए अपने–आप में एक अलग ही विषय है। यह उम्र एक समस्या की उम्र कही गई है। कुछ विशेषज्ञ तो इसे 'संकट का समय' मानते हैं। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि बच्चे के लिए यह अवस्था एक नया अनुभव होता है। दुनिया बदल जाती है। हो सकता है कि इस मानसिक परिवर्तन का कारण उसका अपना शारीरिक विकास भी हो। आज तक शरीर, जो एक तरीके से बढ़ रहा था, उसमें तब्दीली होने लगती है। उसके लिए यह एक ऐसा अनुभव होता है, जो उसका मन अधिक–से–अधिक समय तक प्रकाशित नहीं करता। उसे इसका खुलासा नहीं मिलता। मन की अवस्था भी बदल जाती है। मन दूसरी बातों से हटकर इधर–उधर भटकने लगता है। एकाग्रता नहीं रहती। शारीरिक विकास तो एक ढंग से हो जाता है, उसकी शारीरिक प्रवृत्तियां भी सयानों की–सी होने लगती हैं। लेकिन मानस इतना विकसित अभी तक नहीं हो पाता, जिससे वह अपने–आपको ठीक–ठीक समझ सके।

वास्तविकता–परिचय–काल में बच्चा चीजों के वास्तविक आकार के बारे में सज्ञान होने लगता है और अब किशोर–अवस्था आने पर, जबकि उसके मन की अवस्था भी बदलने लगती है, उसके कला के काम पर अत्यंत महत्वपूर्ण असर पड़ता है। वास्तविकता के बारे में सचेत और संज्ञान होने के कारण उसे शीघ्र नैराश्य का अनुभव होता है। वह एक चित्र बनाने जाता है, किंतु चित्र उतना वास्तविक नहीं बनता, जितना उसे 'दिखता है' उसकी आंखें वस्तु में और उसके चित्र में कोई भी फर्क नहीं चाहतीं, लेकिन उसका हाथ हार मान जाता है। बच्चे की हिम्मत टूट जाती है और कला की तरफ से उसका दिल हटने लगता है।

अक्सर कला–शिक्षकों का कहना है कि यह अवस्था हर व्यक्ति के जीवन में आती ही है (कुछ ऐसे व्यक्तियों को छोड़कर, जो जन्मजात कलाकार हों)। उनका कहना है कि यह विकास की एक प्राकृतिक सीढ़ी है। वे कहते हैं कि हर एक व्यक्ति को इस संकट–काल से गुजरना ही पड़ता है। इस अवस्था की चर्चा विस्तार से आगे चलकर करेंगे, अभी तो केवल यह कहना चाहते हैं कि आज की हालत में किशोर–अवस्था का यह संकट आएगा ही। किंतु शिक्षा का ढांचा और उसके द्वारा समाज का संपूर्ण परिवर्तन जब तक नहीं होगा, तब तक केवल कलाशिक्षा ही नहीं, जीवन के सभी पहलू हमारे लिये समस्या बने रहेंगे।

इन अवस्थाओं के बारे में अक्सर निश्चित उम्र तय की जाती है। कुछ हद तक तो इन अवस्थाओं की उम्र इस तरह निश्चित करना ठीक होता है, लेकिन हर बच्चा दूसरे बच्चे से इतना अलग 'प्रकार' का होता है कि इन अवस्थाओं में साधारण कल्पना से कहीं अधिक अंतर हो सकता है। अनगिनत अनुभवों में से एक यहां बयान कर देने से आशा है, इस प्रश्न की कुछ सफाई हो जाएगी। बारह साल की एक लड़की ने जब चित्र बनाना शुरू किया, तो उसने ऐसे चित्र बनाए, जो आमतौर पर सात साल के बालक का काम कहा जाएगा। यह तो एक आत्यंतिक

उदाहरण हुआ, लेकिन आमतौर पर दो–तीन साल का फर्क होना कोई आश्चर्य की बात नहीं होती।

कीरम–कांटे की अवस्था आमतौर पर चार साल की उम्र तक चलती है। चार साल की उम्र के लगभग प्रतीक की अवस्था शुरू हो जाती है। पहले ही कहा जा चुका है कि इन अवस्थाओं के ऐसे नियम नहीं हैं कि एक अवस्था एक दिन खतम हुई और दूसरी अगले दिन शुरू हो गई। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करने की प्रक्रिया का काल ऐसा होता है, जिसमें समाप्त होनेवाली और नई आनेवाली अवस्था साथ–साथ चलती है। यह तब्दीली अचानक नहीं होती, बल्कि धीरे–धीरे बिना किसी स्पष्ट प्रदर्शन के आने–आप ही हो जाती है।

बच्चों का रंग–बोध

चार–पांच से लेकर आठ–नौ साल तक 'प्रतीक–काल' रहता है। यह अवस्था बच्चे की सजृनात्मक प्रवृत्ति के लिए सबसे अधिक क्रियाशील होती है। इस तरह प्रतीक और आकृति के आकार में बड़ा अंतर होता है। इसी तरह रंग के चुनाव में भी अपनी एक विशेषता रहती है। प्रकृति के रंगों से बच्चे के चित्र में उपयोग किए गए रंग बिल्कुल निराले हो सकते हैं (चित्र संख्या 42 और 51)। मेरे सामने इस उम्र के बच्चों के सैकड़ों चित्र हैं। इनमें से बहुत से ऐसे हैं, जिन्हें बच्चों की कला से अपरिचित व्यक्ति यह कहकर बगल कर देगा कि आदमी का मुंह क्या हरा होता है? क्या वह नीला होता है या छत नीली और आकाश पीला होता है ?

बच्चे वास्तविक रंगों की नकल नहीं करते, बल्कि अपने चुनाव के अनुसार रंगों का उपयोग करते हैं। यह गुण बुनियादी तौर पर सृजनात्मक वृत्ति का अंग होता है, नकल या हू–ब–हू बनाने की वृत्ति नही। यही स्वभाव ऊंची कला का भी होता है। अंजता, राजपूत आदि कला–शैलियों को अगर सरसरी नजर से भी देखा जाये, तो ध्यान में आ जाएगा कि रंगों का इस तरह का चुनाव बच्चों की कला में ही नहीं, बल्कि सभी कला शैलियों में पाया जाता है। आज जब कि साधारण व्यक्ति यूरोप की कला से, वास्तविकता–प्रधान कला मानकर परिचित है, उस कला का भी यही स्वभाव था। पंद्रहवीं शताब्दी में 'रेनेसां' के पहले यूरोप की ईसाई–कला में रंगों का चुनाव भी पूर्वी कलाओं की तरह का था । वहां वास्तविकतावाद 'रेनेसां' आने पर प्रारंभ हुआ। रंगों के इस तरह आलंकारिक चुनाव के पीछे अनुकरणात्मक नहीं, बल्कि सृजनात्मक वृत्ति होती है।

शुरू–शुरू में जब बच्चे को रंगों का डिब्बा मिलता है, तो वह उसे बड़ी रुचि के साथ देखता है और उसकी परीक्षा करता है। वह रंगों से शुरू–शुरू में जब चित्र बनाता है, तो उसका पूरा चित्र एक ही रंग की रेखाओं से बनता हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि जो भी रंग वह हाथ में लेता है, उससे वह इतना मुग्ध हो जाता है कि उसे दूसरे रंग का खयाल भी नहीं रहता। यह भी हो सकता है कि रंग इस्तेमाल करने की उसकी वृत्ति के विकास के लिए कुछ समय की जरूरत होती है। उस समय उसे प्रत्येक रंग के साथ परिचय करने की जरूरत होती होगी। एकदम शुरू के दिनों में वह रंगों के आपसी संबंध के बारे में इसीलिये सज्ञान नहीं होता। यह अवस्था कुछ दिन तक चलती है फिर वह एक के बदले दो और फिर अधिक रंगों को इस्तेमाल करने लगता हैं। रंगों के पहले अनुभव में जो चुनाव बच्चा करता है, वह रंग के डिब्बे से करता है। बाद में चुनाव उसकी 'मानसिक चित्र–योजना' द्वारा निश्चित किया जाता है।

रंगों का पहला उपयोग केवल रेखा द्वारा ही होता है। मकान लाल है, तो वह लाल रेखाओं से बना मकान होगा। रंग भरने की अवस्था दूसरी है। बच्चा रंग भरकर जब चित्र बनाना शुरू करता है, तो रंगों से रेखाकार बनाकर उसमें रंग भरता है। जिस आकार में रंग भरा जायेगा, वह स्वाभाविक ही अधिक दीखेगा। इसलिये रंगीन रेखाओं की अवस्था और रंग भरने की अवस्था के बीच के काल में यह छोटा चित्रकार केवल उसी आकार में रंग भरता है, जिसे वह चित्र में अधिक अहमियत देना चाहता हो (चित्र–संख्या 12)। अगर आदमी की कमीज नीली है और अगर वह नीली कमीज चित्र का मुख्य विषय है, तो हो सकता है कि बाकी चित्र तो रंगीन रेखाओं से बने और उसकी कमीज नीले रंग से भरकर बने।

इस अवस्था की चित्र–व्यवस्था के बारे में भी चर्चा करना जरूरी है। शुरू–शुरू के प्रतीक सरल होते

हैं और चित्रों के विषय भी सरल होते हैं। प्रतीक–काल के आरंभ के चित्र अक्सर एक–दो सरल प्रतीकों द्वारा ही बनते हैं। अगर इस समय बच्चे को कागज और लेखनी देकर चित्र बनाएगा, उसमें यह जरूरी नहीं कि पूरे कागज की जगह का उपयोग हो। हां, आमतौर पर यह अवश्य देखा गया है कि उनका स्थान–निर्णय विशेष प्रकार का होता है। उसी कागज पर वह फिर और कुछ बना देता है। यह दूसरा चित्र पहले चित्र से संबद्ध नहीं होता। इसी तरह इस अवस्था में बच्चे एक ही कागज पर कई 'चित्र' बना देते हैं। इनके इन चित्रों के बारे में यह कहना ठीक होगा कि एक कागज पर बने हुए चित्रों के अलग–अलग प्रतीकों में कोई विचार–समन्वय नहीं होता। विचार–समन्वय या विषय–समन्वय के अभाव के कारण चित्र में 'देश' (स्पेस) की भावना भी नहीं आती। जिस पट पर वे चित्र बने हैं, वह केवल कागज या ऐसी कोई चीज नहीं, बल्कि वह 'देश' है, इसका भान उन्हें नहीं होता।

सयानों को लिखते देखकर कुछ बच्चे चित्र भी उसकी तरह बनाना शुरू करते हैं। यानी कागज के बाएं, ऊपरवाले कोने से चित्र बनाना शुरू होता है और वे उसे उसी तरह बनाते हैं, जैसे बाएं से दाहिने सिरे की तरफ लिखा जाता है (चित्र संख्या 18)। इससे भी पता चलता है कि आरंभ में बच्चों को देख का भान नहीं होता। उस भान को पाने के लिए कुछ समय लगता है। शिक्षा–शास्त्रियों के कथनानुसार इस बोध के विकास के लिए कला–अनुभवों द्वारा बड़ी मदद मिलती है अगर कला–अनुभव न दिए जांए, तो आमतौर पर यह भान देर से आयेगा। वे कहते हैं कि 'सेंस ऑफ परसेप्शन' के विकास के लिए कला–शिक्षा का बहुत महत्व हैं।

धीरे–धीरे बालक अपने प्रतीकों में समन्वय–निर्माण कर लेता है और उसके चित्र के सब प्रतीक किसी विचार (आइडिया) से संबद्ध होने लगते है। यह अवस्था पूरी विकसित होने पर चित्र में खींचे गये किसी भी आकार को अगर बच्चे से पूछें, तो वह उसे चित्र के विशय से कुछ–न–कुछ संबंध रखनेवाली चीज कह बतायेगा (चित्र –संख्या 13)।

अब उसके चित्रों की पृष्ठिभूमि में भी रंग आने शुरू होते हैं। आदमी जमीन पर खड़ा है, तो जमीन भी रंगीन बनती है। यानी चित्रकार अब कागज की जगह का पूरा–पूरा उपयोग करता है अब उसके चित्र में वैचाारिक ऐक्य–यूनिटी इन आइडिया– (चित्र–संख्या 16 और 43) होता है। लेकिन देश–विन्यास (कम्पोजिशन) की दृष्टि से यह विकास कोई खास अहमियत का नहीं है। हां, किसी–किसी व्यक्तिगत उदाहरण में विचार–ऐक्य के विकास के द्वारा देश–विन्यास की शक्ति को भी मदद मिलती हैं जो बच्चे लिखने के तरीके से चित्र बनाना शुरू करते हैं, उन्हें खासतौर पर इससे लाभ होता है। क्योंकि जब एक कागज पर ऐसा चित्र बनाने की योजना होगी, जिसमें विचार का ऐक्य हो, तो उसकी स्थान–व्यवस्था की भी स्वाभाविक ही योजना बनेगी।

बच्चों में देश–विन्यास का बोध जन्मजात

लेकिन आमतौर पर बच्चे के कला–धर्म में देश–विन्यास का संतुलन स्वाभाविक ही पाया जाता है। इस कथन का सबूत हम अपने कुछ प्रयोगों के आधार पर देंगे। मुझे बच्चों के चित्र देखकर हमेशा यह लगता था कि बच्चों को स्वाभाविक तौर पर स्थान–व्यवस्था का बोध (सेंस ऑफ कम्पोजिशन) होता है। रोज–रोज बच्चे जो दर्जनों चित्र बनाते रहे, उनमें से अधिकतर की स्थान–योजना संतुलित होती थी।

इसी प्रकार का एक प्रयोग बाद में किया गया। पेंसिल की रेखा के बदले पहाड़ी,आका ा और भूमि रंग से बनाकर दी गयी।

इस कागज पर भी एक पेड़ बनाना था। इस प्रयोग के नतीजे भी इसी प्रकार आये। इनमें से एक चित्र इस पुस्तक में दिया गया है। (चित्र–संख्या 33)

प्रतीक–काल, जो कि आमतौर पर देखा गया है, आठ या नौ वर्ष की उम्र तक चलता है। इस अवस्था में बच्चा जो 'देखता है', उसका नहीं, बल्कि जो 'जानता है', उसका चित्र बनाता है।

वास्तविकता–परिचय–काल

पिछली अवस्था के चित्र चूंकि चाक्षुष अनुभवों के नतीजे नहीं होते, उन्हें अगर 'तार्किक' कहा जाए, तो शायद ठीक होगा या फिर इन्हें 'यौक्तिक' भी कह सकते हैं।

बच्चे से अगर पूछें कि यह चीज तो ऐसी नहीं होती, जैसे तुमने बनाई, तो उसे वह तर्क द्वारा समझाने की कोशिश करेगा और कहेगा कि नहीं, वह तो ऐसी ही होती है। एक छह साल का बच्चा चित्र बना रहा था। उसने दो समानांतर रेखाएं खींची। वह थी उसकी सड़क। सड़क पर आदमी चल रहे थे। उसके पास बैठे हुए उसके मौसेरे भाई ने, जो पंद्रह वर्ष का था और दूसरे गांव से छुट्टी बिताने के लिए आया हुआ था, उससे पूछा : ''क्या चित्र बनाया ?'' छोटे भाई ने जवाब दिया : ''सड़क पर आदमी चल रहे हैं।'' यह सड़क पर चलने वाले आदमी उसने सड़क की दिशा में इस तरह बनाए कि मामूली तौर पर कहा जाएगा कि वह सड़क पर लेटे हुए हैं (चित्र–संख्या 39)। बड़ा भाई समझाने लगा : ''अरे, आदमी क्या सड़क पर लेटे हैं ? अगर वह सड़क पर चल रहे हैं, तो देखो, ऐसे बनाना चाहिए ।'' यह कहकर उसने सड़क के साथ समकोण बनाते हुए एक लकीर खींची। आदमी जब सड़क पर खड़ा होगा, तो स्वाभाविक ही सड़क पर समकोण बनाते हुए खड़ा होगा। बड़ा भाई जो कह रहा था, वह अपने कला–अनुभव के अभाव के कारण कह रहा था। लेकिन छोटा भाई अपने मन में स्पष्ट 'जानता', उसने यह युक्ति पेश की। यह बातचीत दोनों भाइयों के बीच अचानक ही हो गई थी। अक्सर बच्चे के सचेत मन में इस तरह का युक्तिवाद या तर्कवाद नहीं होता। यह युक्तिवाद की प्रक्रिया बालक के मन में न जानते हुए ही हो जाती है। इसलिए हम इन चित्रों को यौक्तिक या तर्कसंगत कह रहे हैं।

प्रतीक–काल के चित्र अगर यौक्तिक या तर्कसंगत होते हैं, तो वास्तविकता–परिचय–काल के चित्र चाक्षुष होते हैं। इन चित्रों पर चाक्षुष अनुभवों का प्रभाव होने लगता है।

आरंभ में केवल आकारों का स्वरूप वास्तविक होने लगता है। किंतु चित्र में गहराई का भान नहीं होता (चित्र–संख्या 28)। वास्तविकता–परिचय–काल की यह पहली अवस्था है, जबकि बच्चे के चित्र में तीसरी विमा (डायमेंशन) का प्रवेश नहीं होता। पहले चित्र के आगे–पीछे की चीजें एक–दूसरे के ऊपर बनाना शुरू करता है। इस अवस्था के पहले अगर बड़ा पेड़ बनाया, तो उसके पीछे का आकाश पेड़ के पीछे नहीं, बल्कि पेड़ के ऊपर जो जगह कागज पर बची है या कोने में, जहां पेड़ नहीं है, वहां बनायेगा। चित्र की अलग–अलग चीजें आगे–पीछे हैं। इसकी ओर वह ध्यान नहीं देता। मकान के अंदर आदमी बैठा है, चीजें रखी हैं, यह सब अभी तक वैसे बनाता है, जैसे मकान के सामनेवाली दीवार कांच की या पारदर्शक हो (चित्र–संख्या 20)। ये सब चीजें एक मोटी अपारदर्शक दीवार के पीछे हैं, इस बात का उसके चित्र के लिए कोई महत्व नहीं होता। लेकिन चाक्षुश अनुभवों का असर पड़ना आरंभ होने के बाद उसे तीसरी विमा का भी ख्याल हो गया होता है।

पहले तो चीजों का आगे–पीछे रहना, एक–दूसरी चीजों की गहराई के हिसाब से उनके आगे–पीछे बनाना भुारू होता हैं फिर हर व्यक्तिगत वस्तु की लंबाई–चौड़ाई के अलावा उसकी मोटाई या गहराई पर भी ध्यान जाता है। उसके चित्रों में परिप्रेक्षण (पर्सपेक्टिव) का भी प्रवेश होने लगता है। जो मकान केवल सामने की दीवार बना देने से ही पूरा हो जाता था (चित्र–संख्या 21 और 55), अब चित्रकार को मकान की बगलवाली दीवार भी 'दीखने' लगती हैं। वह उस दीवार का दृश्य भी दिखाना चाहता है (चित्र–संख्या 31)। उसे, पास का आदमी या कोई भी चीज बड़ी और वही चीज दूर चले जाने पर छोटी दिखने लगती है, इसका सिद्धांत समझ में आने लगता है।

वास्तविकता–परिचय–काल का समय बारह–तेरह साल की उम्र तक रहता है। इस अवस्था का विशेष महत्व है इसमें बालक की कल्पना–शक्ति का प्राधान्य न रहकर उसकी विवेचनात्मक शक्ति का प्राधान्य रहता है। चाक्षुश अनुभवों का अधिक असर होने के कारण बारीकियों पर नजर पड़ती हे। इसी कारण वह अपने चित्र में भी उन बारीकियों को दिखाना चाहता है। उसकी पूरी दृष्टि ही चाक्षुष–प्रधान हो जाती है।

बच्चों की कला की अवस्थाओं में यह आखिर की अवस्था है। यह मानना ठीक होगा कि वास्तविकता–परिचय–काल के आखिर का समय ऐसा काल है, जिसकी कला 'बच्चों की कला' नहीं कही जा

सकती। इस अवस्था के आखिरी काल को कुछ विशेषज्ञ 'दमन–काल' (एज आफ रिप्रेशन) मानते हैं। अगर इस उम्र में भी कला–प्रवृत्ति जारी रहे, तो वह 'बच्चे की कला' की अवस्था से बदलकर 'सयानों की कला' बन जाएगी। 'दमन काल' इसे इसलिए कहा गया है कि यह ऐसी अवस्था है, जिसमें बच्चे की कुछ शक्तियों का दमन दूसरी कुछ शक्तियों द्वारा होता हैं। उसका वह विशेष प्रकार के मानसिक प्रतिबिंब अनुभव करने का गुण, जिसके द्वारा वह अपने काल्पनिक आकारों का निर्माण करता है, चाक्षुष अनुभवों और नई पाई हुई विवचेनात्मक दृष्टि दब जाती है।

बाल्यावस्था में आत्म–प्रकटन का मुख्य साधन यही आकारों के उपयोग द्वारा चित्र की भाषा थी। पहले कहा जा चुका है कि बच्चे की कला का एक बहुत बड़ा महत्व उसका एक संसूचन का माध्यम होना है। इसका एक कारण यह भी है कि जबान की भाषा पर तब तक बालक इतना काबू नहीं कर पाता; जैसा कि आत्म–प्रकटन उसे करना है, वह उसे इस भाषा में नहीं रख पाता। जबान की भाषा पर काबू पाने के लिए कुछ परिमाण में मानसिक क्रिया की जरूरत पड़ती है। आदिम मनुष्य के संसूचन का माध्यम भी कला–प्रवृत्तियां था। सांस्कृतिक विकास के साथ–साथ उसने जबान की भाषा का विकास किया। इसी तरह एक व्यक्ति के जीवन में भी जबान की भाषा एक खास अवस्था पर पहुंचने पर ही आती है। तब तक उसका संसूचन का स्वाभाविक माध्यम होती हैं कला–प्रवृतियां, यानी आकार से संबंध रखनेवाली भाषाएं, चाहे वे चाक्षुष हों, चाहे श्रौत। प्रतीक–काल तक बालक के जीवन में आत्म–प्रकटन के माध्यम के तौर पर कलात्मक प्रवृत्तियों का जो महत्व था, वह उसके बाद नहीं रहता। जबान की भाषा, जो तब तक काफी काबू में आ जाती है, उसका स्थान ले लेती है।

बुद्धि का विकास भी कुछ हद तक इस दमन के लिए जिम्मेवार होता है। बालक पहले अनजाने (अन्कान्शस) सर्जन करने में आनंद लेता था। वह तरह–तरह की परी–परिंदों की कहानियों को सुनकर मोहित हो जाता था। अब चूंकि उसकी बुद्धि कहती है : 'यह तो ठीक नहीं, यह तो संभव नहीं', तो वह उस मजे को भूल जाता है। अपने चित्रों में प्रकृति के साथ आकारों की तुलना करता है और उनमें गलती महसूस करता है। वह उसके लिए निरुत्साह करनेवाला अनुभव होता हैं जिस काम को वह ठीक तरह से नहीं कर सकता, उससे उसका दिल हट जाता है।

इस अवस्था में अलबत्ता कुछ ऐसे बालक होते हैं, जो अपनी कला–प्रवृत्तियों को चालू रखते हैं। इनका काम वास्तविकता की तरफ झुकाव रखते हुए होता है (चित्र–संख्या 32)। वे प्रकृति की आकृति को ठीक–ठीक उतारने में आनंद लेते हैं, लेकिन इस तरह के बच्चों की संख्या कम होती है। फिर भी जो होते हैं, उनके बारे में यह जानना जरूरी है कि वे एक खास 'मनोवैज्ञानिक प्रकार' (साइकॉलाजिकल टाइप)के होते हैं। उनकी कला–प्रवृत्ति अगर बाद में भी चालू रहे, और जैसा कि उनके 'प्रकार' की अपनी आवश्यकता होती है, उस तरह का प्रोत्साहन मिलता रहे, तो यह दमन–काल उनके विकास में बाधा नहीं देगा, हो सकता है, उन बच्चों में से कुछ बड़े होने पर सफल चित्रकार बनें। कला–प्रवृत्ति अगर चालू रहे और अगर वह पाठ्यक्रम का अंग बनकर रहे, तो वास्तविकता–परिचय–काल में काफी बच्चे ऐसे होंगे, जो चूंकि स्वतंत्र आत्म–प्रकटन नहीं कर पाते या उसमें संकोच अनुभव करते हैं, वे या तो नकल करना शुरू कर देंगे या फिर जॉमिट्रिकल डिजाइन बनाने में थोड़ी–बहुत रुचि लेने लगेंगे। यह उनकी कलात्मक, सृजनात्मक शक्ति के दब जाने के कारण होता है।

इस काल की चर्चा समाप्त करने के पहले एक बात और! बाल्यावस्था में बच्चा जो कुछ भी देखता, सुनता या अनुभव करता है, उसे वह आत्म–केंद्रित (सेल्फ सेंटर्ड) नजर से अपनाता है। उसे लगता है कि जो कुछ भी है, वह उसी के चारों ओर है और उसी के लिए है। यानी वह अपने–आप में ही वास करता है इसलिये जो कुछ भी अभी तक वह करता रहा, उससे पूरा–पूरा संतुष्ट होता था। उसका मापदंड भी अपने जगत् का ही था। अभी तक उसकी दृष्टि अंतर्मुखी थी। बारह साल की उम्र होने पर, जबकि वह बड़ों की दुनिया के प्रवेश–द्वार पर पहुंचता है, उसका अपना मापदंड काम नहीं करता। सयानों के जगत में काम करने के लिए उसे सयानों जैसा होना है, यह बात वह अंदर से महसूस करता है। इसलिए उसे बचपन की बातें दुहराने में संकोच होता है।

अभी तक बालक जो कुछ करता था, वह केवल अपने लिए ही। लेकिन जब वह समाज के बारे में संज्ञान होने

लगता है, तब उसे काफी बातें अपने लिए ही न करके समाज के लिए भी करनी पड़ती है। बाहर के जगत के बारे में संज्ञान होने पर उसकी नजर बहिर्मुखी होने लगती है। आज के समाज के स्वरूप के कारण उसके साथ उसकी बचपन की कला–कृतियां मेल नहीं खाती। जब वह कुछ करता है, तो उसकी कोशिश यह होती है कि उसे बड़ों जैसा ही करे। समाज की साधारण रुचि कला में वास्तविकता–प्रधान है। इसलिए बच्चा भी उसी के मापदंड से अपने काम को देखता है। अभी तक वह जो कुछ करता आया, अब उसे वह करने में संकोच होता है। यही कारण है कि आमतौर पर बच्चे की कला–प्रवृत्ति आज की हालत में करीब–करीब बंद ही हो जाती है।

पठन सामग्री – 2

शिक्षा–पद्धति

देवी प्रसाद

''मुझे केवल एक बात कहनी है और वह यह कि हमेशा अपने सिद्धांत का उपदेश ही देते रहने की चेष्टा न करो, बल्कि करो यह कि प्रेम से अपने–आपको ही दे डालो।'' रवीन्द्रनाथ

उचित तो यह है कि शिक्षक अपने काम की पद्धति स्वयं तैयार करें। शुरू–शुरू में जो शिक्षक प्रयोग के तौर पर किसी विषय को लेकर काम करते हैं, उनको ऐसा करना पड़ता है; क्योंकि इस तरह का काम पहले कम हुआ होता है। किसी–किसी क्षेत्र में तो पहले बिलकुल ही काम नहीं हुआ होता। बच्चों की कला–शिक्षा का विषय ऐसा ही है। वियेना के रहने वाले कला–शिक्षक फ्रांज सिजेक के पहले बच्चे भी कलाकार होते हैं, ऐसी बात सुनते ही लोग हंस पड़ते थे। किंतु आज बच्चों की कला–प्रदर्शनियां करना आम फैशन हो गया है। सौभाग्य से उस विषय में हमारा अनुभव–भंडार यथेष्ट है। दुनिया के कुछ देशों में उस विषय पर काफी काम किया जा रहा है।

अब यह पूरी तरह से समझ लिया गया है कि बच्चे में चित्र बनाने की प्रेरणा (उत्कंठा) जन्मतः ही होती है। जिस तरह आदिमानव की स्वाभाविक वृत्ति चट्टानों और गुफाओं की दीवारों पर चित्र आंकने की थी, उसी तरह हर बालक में भी यह एक आदिवृत्ति होती है। शिक्षक को इसी बुनियादी सत्य को समझते हुए बच्चों को कला–अनुभव देने की योजना बनानी चाहिए। शाला में कला–प्रवृत्तियों का संगठन अनुभवी शिक्षकों के तजुर्बों के आधार पर किया जा सकता है। हम यहां अपने कुछ अनुभव और सुझाव रख रहे हैं।

प्रारंभ कब करें? साधनों का प्रश्न

सबसे पहले तो यह जान लेना उचित होगा कि चित्रकला की प्रवृत्ति तभी से शुरू कर देनी चाहिए, जब से बालक पेंसिल या लेखनी द्वारा कीरम–कांटे बनाना शुरू कर दे। इस तरह कीरम–कांटे बनाना बच्चे के कला–अनुभवों में से सबसे पहला अनुभव होता है। वह उसकी पहली पैड़ी होती है, जबकि बच्चा अपने साधनों से परिचय करता है। साधारण तौर पर शिक्षक यह समझते हैं चित्रकला का काम बच्चों को तभी देना चाहिये, जब कि उन्हें आकार और रंग का ज्ञान हो जाए। किंतु यह विचार अवैज्ञानिक है बाल स्वभाव के विरूद्ध भी। बच्चों को जगत से जो परिचय होता है, वह आकार और रंग द्वारा ही होता है। इसलिए उन्हें शुरू से ही चित्रकला के साधन मिलने चाहिए। कहीं–कहीं तो शिक्षकों ने अत्यंत महत्वपूर्ण प्रयोग किए हैं। उन्होंने बच्चों को, जबकि वे पेंसिल या तुलिका अच्छी तरह पकड़ नहीं पाते, तभी से रंग की कटोरियां दीं और बड़े–बड़े कागज। बच्चों को रंग में हाथ डुबोकर कागज पर तरह–तरह के आकार ओर छंद आदि बनाने में आनंद आता है। साथ ही साथ उनका स्नायु–विकास (मस्क्यूलर) और भाव–प्रकाशन होता है। आज यह पद्धति आमतौर पर प्रचलित हो गई है। कुछ लोग यह भी समझते हैं कि बच्चों को पहले पेंसिल से चित्र बनाना आना चाहिये और फिर पेस्टल रंग से और आखिर में पानी के और तेल के रंगों से। कुछ प्रत्यक्ष कार्य के बाद हमें इसका उल्टा ही अनुभव हुआ है। बच्चों की कल्पना में वास्तविक जगत की बारीक बातें बारीक बनकर नहीं आतीं, किसी आकार की बाराकी

में वे नहीं जाते। पेंसिल की बारीक नोक उन्हें एक सीमा में बांध देती है। बालक क्या कभी सीमा–बंधन चाहेगा? उसका तो स्वच्छंद विचरण करने का स्वभाव होता है, इसलिए उसे ऐसे साधन चाहिए, जो उसे असीम संभावनाएं प्रदान करें। पेस्टल रंग भी इतना चूरा–चूरा हो जानेवाला और कागज से उठ जानेवाला होता है कि बालक को कुछ अनुभव के बाद उससे अरुचि पैदा हो जाती है। हमने देखा कि ब्रश बच्चों को बड़े अच्छे लगते हैं। उनसे बारीक लकीर, मोटा धब्बा, हलका ओर गहरा रंग, भरट रंग आदि सब प्रकार का काम हो सकता है। ऐसे ही क्रेऑन, जो मोम के होते हैं और जिनसे बना हुआ चित्र उठता नहीं है और जो आसानी से हल्के और गहरे रंग के रूप में मिल सकते हैं, बच्चों को खूब पसंद होते हैं। आत्म–प्रकटन के साधन जब बच्चों के अनुकूल और रुचिकर होंगे, तभी आत्म–प्रकटन आनंदमय होगा और उसका उद्देश्य पूरा हो सकेगा।

असल बात यह है कि साधन और माध्यम के चुनाव में व्यक्ति का स्वभाव काम करता है। किसी को हो सकता है, क्रेऑन से काम करना अच्छा लगे और किसी को पानी के रंगों से। ऐसे बालक भी होते हैं, जो केवल पेंसिल ही लेकर चित्र बनाना पसंद करते हैं। साथ ही वातावरण और परंपरा का भी असर होता है। बच्चों की जिस टोली में शुरू में पानी के रंगों का इस्तेमाल नहीं किया गया है, उसे आठ–नौ वर्ष की आयु में पानी के रंग दिये जाए, तो कुछ देर में हो सकता है कि उनमें से कुछ बच्चों की हिम्मत टूट जाय, तो हमें ताज्जुब नहीं होगा। इसका कारण यह है कि पानी के रंग तरल होते हैं और अगर ठीक तरह ब्रश में न लिये जाए, तो कागज पर बहने लगते हैं। एक बार लगाने के बाद दूसरी बार लगाने के लिए अच्छा तभी होता है, जबकि पहला स्तर सूख जाए, नहीं तो धब्बे पड़ जाते हैं। चूंकि इन बच्चों को शुरू से ही इस माध्यम का परिचय नहीं हुआ, इसलिये अब आरंभ करते समय संभालना मुश्किल हो जाता है और वे हिम्मत हार जाते हैं। वैसे तो कुछ समझने और स्वयं अनुभव पाने के बाद परिस्थिति ठीक हो जाती है, किंतु हमने यह भी पाया है कि एकआध बच्चा आखिर तक पानी के रंगों से डरता रहा। इसलिए यह जरूरी है कि बालकों को आरंभ से ही तरह–तरह के साधनों और माध्यमों से परिचय रहे और उन्हें वे हर समय उपलब्ध हों।

यहां एक प्रश्न उठना स्वाभाविक होगा। आम शाला में इतने प्रकार के साधन, माध्यम आदि जुटाना आर्थिक दृष्टि से क्या व्यावहारिक होगा? प्रश्न बिलकुल उचित है, किंतु यह तभी उठता है, जबकि हम कला–साधनों का एक मात्र अर्थ विन्सर यूटन या रीव्ज के कला साधन समझते हैं। ऐसा सोचने वाले शिक्षक को सौ–पचास वर्ष पहले की कल्पना करनी चाहिए। क्या तब भी हमारे कलाकार और कारीगर औजार, रंग आदि विदेश से मंगाते थे? आज भी अनेक ऐसे ऊंचे स्तर के कलाकार हैं, जो अपने साधन खुद बना लेते हैं। बच्चों की कला–प्रवृतियों के लिए जो सामान लगता है, वह तो सरलता से संग्रह किया या बना लिया जा सकता है। अगर शिक्षक उत्साही और कल्पनाशील होगा, तो उसे कम–से–कम खर्च में अनेक प्रकार के साधन उपलब्ध हो सकते हैं। गेरू, पीली मिट्टी, हरे पत्थर आदि से रंग बनाना, धुएं से काला और नील का नीला रंग तैयार कर लेना कोई मुश्किल बात नहीं है। अम्बाड़ी, सन आदि के रेशों से, जानवरों के कान के और बगल के बालों से बहुत सुंदर ब्रश बन जाते हैं। खजूर की टहनी को एक तरफ कूटकर मोटा काम करने के लिए काफी अच्छा ब्रश बन जाता है। इस तरह का काम एक उत्साही शिक्षक के लिए कुछ कठिन नहीं है।

मार्गदर्शन

हमारे देश में अभी तक बच्चों की कला यह नाम कम शिक्षक ही जानते हैं। जब कभी ऐसे शिक्षक हमारे बच्चों के कला–वर्ग, कला–भवन में आते हैं, तो अक्सर वे यही सवाल पूछते हैं : बच्चे जो चित्र या मूर्ति बना रहे हैं, क्या वह आपके कहे अनुसार कर रहे हैं? इसका उत्तर अस्सी नब्बे मौकों पर नहीं होगा। यही उत्तर शत–प्रतिशत मौकों पर नहीं होगा, इसका कारण समझना चाहिए।

हमने बच्चों की स्वाभाविक कला–सीढ़ी की विस्तृत चर्चा करते समय देखा है कि उनका स्वाभाविक ही विकास होता रहता है। बच्चा दो–ढाई वर्ष की उम्र में गोल–गोल आकारों जैसे कीरम–कांटे खींचता है और 12–13 वर्ष की अवस्था में आकर बाकायदा ऐसे चित्र बनाने लगता है, जो सयानों के काम जैसे दिखने लगें। अगर बच्चे को

उचित वातावरण मिले और अपनी इस कला–सीढ़ी पर उसे स्वाभाविक तौर पर चढ़ने का मौका मिले, तो बिना किसी के कुछ सुझाए ही उसका कला–विकास उसकी अपनी पहुंच तक हो जाएगा। किंतु इतना आदर्श वातावरण और खासतौर पर ऐसा सामाजिक मानस मिलना संभव नहीं है। इसलिये कभी–कभी कुछ मदद और मार्गदर्शन के तौर पर शिक्षक को सुझाव आदि देने पड़ते हैं और वही यह 10–20 प्रतिशत मौकों पर होता है, जब कि ऊपर जिक्र किये गए प्रश्न का उत्तर नहीं में नहीं होगा। किंतु वह हां में तो होगा ही नहीं। क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनुचित होगा, अगर मैं बालक को ऐसा चित्र बनाओ कहूं तो।

बच्चे स्वयं–प्रेरित होकर चित्रकला जैसी प्रवृत्ति में पड़ते हैं, यह सामान्य तौर पर मानी हुई बात है। किंतु हमने यह भी देखा है कि घर या शाला का वातावरण के ऊपर यह प्रेरणा निर्भर होती है। अगर हम यह मान लें कि शाला का वातावरण इस प्रेरणा को देने के लिए अनुकूल है, तो अनुभव यह आएगा कि अधिकतर बच्चे जब चित्रकला करने के लिए आएगे, तो उनके मन में पहले से ही कुछ योजना रहेगी। वे किस प्रवृत्ति में लगेंगे–चित्र बनाना, मिट्टी की मूर्ति या बर्तन, अल्पना आदि – यह उनके मन में पहले से ही ठीक होगा और क्या चित्र बनाना है, यह भी। हो सकता है कि हठात अगर आपने पूछा, तो हर बच्चा यह शब्दों में न बता पाए चलेगा कि वह बिना किसी सचेत–प्रयास के चित्र बनाना शुरू कर देता है। इसका कारण यह है कि उसे आमतौर पर जो बातें आत्म–प्रकटन की प्रेरणा पाने के लिए आवश्यक हैं, उस वातावरण में मिल रही हैं। यानी उसे नित्य नए–नए अनुभव और भरपूर प्रोत्साहन वातावरण द्वारा मिल रहा है।

कभी–कभी कुछ ऐसे मौके आते हैं, जब कुछ कारणों से बालक अनुकूल वातावरण होते हुए भी कुछ कर नहीं पाता। उसे कुछ सूझता नहीं। सच बात तो यह है कि सचमुच अनुकूल वातावरण आज की हालत में हो नहीं सकता। घर की हालत भी प्रोत्साहन देने वाली हो और शाला की भी वैसी हो, तो भी बाहरी समाज की परिस्थिति के कारण बालक के मन में गांठ बैठ सकती है। कई जन्मजात कारण भी हो सकते हैं, जो हर व्यक्ति की संभावनाओं की सीमा को निश्चित करते हैं। इन बातों के कारण कुछ बालक ऐसी परिस्थिति में पड़ जाते हैं कि उन्हें कुछ सूझता नहीं। ऐसी हालत में जरूरी है कि परिस्थिति का निदान (डायग्नोसिस) किया जाय। सबसे मुख्य कारण तो पहले कह दिया कि नये अनुभवों का अभाव आत्म–प्रकटन के प्रवाह को रोक देता है। दूसरा कारण न्यूनता का भाव (इन्फीरियारिटी) हो सकता है। कुछ कारणों से–जैसे उचित प्रोत्साहन की कमी, अनुचित समालोचना, खुद की कमजोरी आदि के कारण–आत्म प्रकटन करने में संकोच हो जाता है। खासतौर पर आठ–नौ साल की उम्र के बाद यह बहुत हो सकता है। इसका इलाज यही हो सकता है कि शिक्षक उसे हमेशा उत्साहित करता रहे और कमजोरी के मौके पर उसका सहारा बने। प्रयत्न यह हो कि बालक का न्यूनता का भाव निकल जाय। जहां तक बालक की सीमा है, वहां तक उसे पहुंचाने की जिम्मेवारी शिक्षक और वातावरण की है।

प्रारंभ किया चित्र पूरा किया ही जाए

मार्गदर्शन या सिखाने की जो अत्यंत आवश्यक बातें हैं, उनमें से एक तो यह है कि बालकों को जो भी काम वे हाथ में लें, उसे पूरा करने की आदत डालनी चाहिये। छोटी उम्र में बालक एक ही बैठक में चित्र पूरा कर देता है। पूरा हुआ या नहीं, इसका निर्णय भी वह स्वयं करता है। कभी चित्र दो मिनट में भी पूरा हो जाता इसका निर्णय भी वह स्वयं करता है। कभी चित्र दो मिनट में भी पूरा हो जाता है और कभी एक घंटे तक जमकर भी बालक उसे पूरा कर देता है। परंतु कभी–कभी ऐसे मौके आते हैं, जिनके कारण एक बैठक में चित्र पूरा नहीं हो पाता। या तो वह चित्र इस प्रकार का होता है, जिसमें काम अधिक हो और या किसी दूसरे कारणवश बालक को बीच में उठ जाना पड़ सकता है। शिक्षक का फर्ज है कि वह बालक से दूसरा चित्र बनाने के पहले अपूर्ण चित्र को पूरा करा ले इससे जिस मानसिक ट्रेनिंग की व्यक्ति के विकास करने के लिए आवश्यकता है, वह होगी। हां, इस नियम को इतना कठोर न बनाया जाए कि बालक को नए चित्र बनाने की तीव्र प्रेरणा हो रही हो और शिक्षक उससे कहे कि नहीं, तुम्हें रंग तभी मिलेगा, जबकि पहला चित्र पूरा करोगे। इन बातों का निर्णय शिक्षक को समझ–बूझकर करना चाहिए।

साधनों को स्वच्छ रखें

एक बात और, जिस पर शिक्षक का ध्यान सतत रहना चाहिए। वह यह है कि बालकों को रंग, कूंची आदि साधनों को गंदगी के साथ इस्तेमाल करने से रोकें। रंग आदि स्वतंत्रता के साथ इस्तेमाल किए जाएं, परंतु बालक उनको सफाई से इस्तेमाल करे। रंगों को भी जब आपस में मिलाना हो, तो अलग प्लेट पर मिलाए। रंगों की कटोरियों में रंग आपस में मिलकर अपनी शुद्धता खो बैठते हैं। एक रंग का ब्रश बिना साफ किए दूसरे रंग में न डाला जाए। पानी के बर्तन को साफ रखें, पानी बार–बार बदलते रहें। हाथ बिलकुल साफ रहें। जिस बोर्ड पर रखकर चित्र बना रहे हों, वह साफ हो। सफाई के इस पहलू पर पूरा–पूरा ध्यान रखा जाएगा, तो केवल चित्र ही साफ नहीं बनेंगे, बालक के हृदय में सफाई और सौंदर्य का बोध गहराई तक प्रवेश करेगा।

केवल चित्र–कला ही नहीं, सभी कामों में कुछ सिद्धांतों का पालन होना आवश्यक होता है। चित्र बनाते समय बालक सीधे बैठें। इसमें स्वास्थ्य की दृष्टि तो है ही, कला–प्रवृत्ति में दक्षता हासिल करने के लिए वह जरूरी है। अगर सरल आसन में बैठेंगे, तो शरीर स्वयं संभालेगा और हाथ कंधों से लेकर उंगलियों तक स्वतंत्र रहेगा, जो चित्रकला के लिए अत्यंत आवश्यक है। हाथ को पूरा खोलकर मुक्त भाव से चित्रण करना चाहिए। इसमें सारा शरीर काम करता है। हाथ खुलता है, मन स्वच्छंदता से काम करता है।

बैठने का ढंग

वर्ग के बैठने के बारे में भी कुछ सोच लेना चाहिए। आमतौर पर बालक स्वतंत्र आत्म–प्रकटन ही करेंगे। ऐसी हालत में उन्हें पास–पास न बैठाकर अलग–अलग बैठाना अच्छा है। जहां कहीं भी–निश्चित क्षेत्र में– बैठने की छूट देना उचित है। साथ ही यह भी देखना चाहिए कि बालक बेढंगे तौर पर तो नहीं बैठे हैं। इस ओर ध्यान रखना शिक्षक का काम है। बैठने की चर्चा करते समय प्रकाश की आवश्यकता पर ध्यान देना होगा। बालक जहां भी बैठें, उनकी बायीं ओर से प्रकाश आना चाहिए। प्रकाश सामने से या पीछे से नहीं आना चाहिए। अगर बालक बाएं हाथ से काम करनेवाला है, तो प्रकाश दाहिनी बाजू से आना चाहिए। ऊपर से भी प्रकाश आना अच्छा होता है। अगर गलत जगह से प्रकाश आएगा, तो चित्र पर छाया पड़ेगी और बालक की आंखें खराब होंगी।

बच्चों को पेंसिल या कूंची को एकदम नोक के पास से पकड़ने की आदत पड़ जाती है। शिक्षक भी उस पर ध्यान नही देते। इसका असर यह होता है कि ड्रांइग करते समय हाथ नहीं खुलता, चित्र छोटे–छोटे, छोटी–छोटी लकीरों वाले हो जाते हैं। अगर बिलकुल ही बारीक से काम न हो रहा हो, तो पेंसिल कम–से–कम डेढ़ इंच दूर से पकड़नी चाहिए। अगर स्केचिंग कर रहे हों, तो तीन–चार इंच के फासले पर पकड़ी जानी चाहिए।

चित्र–कला की टेक्नीक सिखानी नहीं है, किंतु साधनों का ठीक उपयोग कैसे करना चाहिए, इसके बारे में बालकों को आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन करना चाहिए जिस प्रकार प्रतिभाशाली कलाकार अपनी टेक्नीक अपने–आप निर्माण करता है, उसी प्रकार हर बालक–कलाकार भी अपनी टेक्नीक स्वयं तैयार करेगा।

आकार–भेद और रंग–भेद का बोध

अलग–अलग आकारों का आपस में फर्क, रंगों के फर्क का ज्ञान वैसे तो कला–प्रवृत्ति करते–करते आ ही जाता है, परंतु उसका अभ्यास सात और आठ साल की उम्र में योजनापूर्वक प्रारंभ करना अच्छा होता है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इससे बालक के आत्म–प्रकटन पर बुरा असर न पड़े। ठीक ढंग से दिया गया इस प्रकार का ज्ञान चित्र–कला, मूर्ति–कला और दस्तकारियों द्वारा किए गए आत्म–प्रकटन को मदद ही पहुंचायेगा।

आम के पत्ते में और केले के पत्ते में क्या भेद है? आकाश के रंग में और जमीन के रंग में क्या फर्क है? ये प्रश्न वैसे तो मोटे दिखते हैं, परंतु इनका उत्तर बालक ठीक समझा सके और खासतौर पर शब्दों की भाषा की अपेक्षा आकार की भाषा में प्रकट कर सके, तो वह ठीक शिक्षा होगी। आम के पत्ते और अमरूद के पत्ते के आकारों

में क्या फर्क है? अमरूद के पत्ते के आकार में और सीताफल के पत्ते के आकारों में में क्या फर्क है? पीपल के पत्ते के रंग में और बेल के पत्ते के रंग का फर्क, तोते का हरा और बेल के पत्ते का हरा, यह सब उसी आकार–भेद और रंग–भेद का सूक्ष्म ज्ञान है, जो धीरे–धीरे बालक को कभी तो विशेष पद्धति द्वारा और कभी स्वाभाविक कला–प्रवृत्तियों के दौरान दिया जाना चाहिए।

इसी सिलसिले में एक बात और कहना आवश्यक है। प्रकृति के साथ बंधुत्व प्रकृति के सौंदर्य के साथ संपर्क की बात पहले अध्याय में कही गई है। कला–शिक्षा स्वयं उस कार्य को तो करती है, परंतु उसका सचेष्ट कार्यक्रम भी हमें बनाना चाहिए। सौभाग्य से भारतीय परंपरा में अनेक बातें ऐसी हैं, जिन्हें अगर समझकर अपना लिया जाए, तो बहुत–सी मंजिल तय हो जाएगी।

रंगों के नाम और सादृष्य

भारतीय चित्र–कला के शास्त्र में षडंग'[1];**Footnotes)**

रूपभेदाः प्रमाणानि

भावलावण्ययोजनम्।

सदृश्यं वर्णिकाभंग

इति चित्रं षडंगकम्।।

आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की पुस्तक भारत शिल्पेर षडंग के अनुसार इन छह अंगों का अर्थ इस प्रकार हैः

1. रूपभेदाः रूप का ज्ञान, रूप–रूप में विभिन्नता, रूप का मर्मभेद या रहस्य–उद्‌घाटन।

2.प्रमाणानिः वस्तुरूप के संबंध में प्रमा और भ्रमविहीन ज्ञानलाभ। वस्तु का नैकट्य, दूरत्व और उसका दैर्ध्य, प्रस्थ इत्यादि का मान–परिमाण।

3. भावः आकृति पर भाावनाओं की प्रतिक्रिया।

4. लवण्ययोजनम्ः लावण्य का निर्माण। रूप का कलात्मक प्रतिरूपण।

5.सदृश्यम्ः किसी एक रूप के भाव को अन्य किसी रूप की सहायता से हमारे मन में उद्रेक कर देना।

6. वर्णिकाभंग : तरह–तरह के वर्णों को उपयोग करने की पद्वति, तूलिका को चलाने की भाव–भंगी।

(छह अंगों) का जिक्र है। इनमें से एक अंग है : सादृष्य। किसी भी आंख सुंदर है, तो उसके साथ उसी आकार से सादृश्य रखनेवाले आकार की सुंदरता भी जोड़ दी जाय, तो आंख दुगुनी सुंदर हो जायेगी। मीनाक्षी–मछली के आकारवाली आंख। शरीर का धड़वाला हिस्सा गोमुखी। इस प्रकार जिस तरह भी हो सके, जिन रास्तों से भी हो सके, प्रकृति के साथ संपर्क और एकात्म–बोध करने का यह एक मार्ग है।

इसी तरह रंगों के नाम की बात है। मैं विलायती नामों को समझ ही नहीं सकता। न्यू ब्लूश कहने से केवल वही समझेगा, जिसने रंग इस्तेमाल किया होगा। परंतु आसमानी नीला, तोतिया हरा सुनने से फौरन विशाल आकाश, सुंदर तोता पक्षी सामने खिलवाड़ करने लगते हैं। रंगों के नाम रखने की पद्धति रंग में प्राण डाल देती है। प्रकृति आत्मसात हो जाती है। यह पद्धति हमें शालाओं में अपनानी चाहिए। सादृश्य का यह पहलू शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग बन जाना चाहिए। यह कला–शिक्षा का काम है।

वर्गीकरण

यह प्रश्न कि किस–किस उम्र में बालकों के साथ काम करने दिया जा सकता है, महत्वपूर्ण है। सामान्य तौर पर अलग–अलग अवस्था वाले बालकों की अलग–अलग टोलियां बनाना उचित होता है, क्योंकि हम चाहते हैं कि बालकों पर उचित समय से पहले सयानों का असर न पड़े। इसलिये किशोर–अवस्था में प्रवेश करनेवाली टोली को प्रतीक–प्रधान अवस्थावाली टोली से अलग काम देना उचित है। आमतौर पर अवस्था का ख्याल रखना चाहिये। हालांकि पूरी शाला के सामूहिक प्रोजेक्टों में सभी साथ काम करें, यह वांछनीय है। ऐसे मौकों पर कार्य–विविधता के कारण वर्गीकरण पर अधिक जोर देने की आवश्यकता नहीं।

एक ही चित्र बार–बार

एक समस्या आमतौर पर शिक्षकों के सामने आती है। देखा जाता है कि कुछ बालक एक ही चित्र को हमेशा बनाते रहते हैं। जब कभी भी वे कला–वर्ग में आते हैं, तो वही एक ही चित्र बनाया और चले गए। इस समस्या को हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मैं तो मानता हूं कि कला–प्रवृति बालक की समग्र शिक्षा का दर्पण होती है। कुछ ऐसी बातें होती हैं, जो दूसरे समय पता नही चलतीं। जिस तरह रोग का निदान किया जाता है, उसी प्रकार कला–प्रवृति का भी निदानात्मक–डायग्नॉस्टिक पहलू होता है। बच्चा हमेशा जो एक ही चित्र बनता है, इसका क्या कारण है? नया चित्र न बनाना जरूर किसी बीमारी का लक्षण है। यह बीमारी क्या हो सकती है? बच्चे के मन में नई बातें प्रवेश नहीं कर रही हैं। जो शिक्षा उसको मिल रही है, वह ऊपर–ही–ऊपर रह जाती है। उसका उसे आंतरिक स्पर्श नहीं होता। शिक्षक को अगर इस बात का बोध हो जाए कि बालक एक ही चित्र बार–बार इसलिए बना रहा है कि उसकी पूरी शिक्षा में कुछ दोष है, उसे जो शिक्षा दी जा रही है, वह उसे स्पर्श नहीं कर रही है, तो वह (शिक्षक) अपनी शिक्षा पद्धति में ही तबदीली करेगा।

मुझे एक तरह के अनुभव अनेक बार आए हैं। एक बार एक बालक एक ही चित्र को करीब–करीब आठ माह तक बनाता रहा। एक घर और उसके सामने एक मुड़ता हुआ रास्ता। कभी–कभी रास्ते पर एक लड़का भी आ जाया करता था। ऊपर आकाश! मैंने अपना एक इलाज उस पर भी आजमाया। चित्रकला–वर्ग में आने पर उससे कई बार कहता थाः तुम आज ऐसा चित्र बनाओ, जो तुमने आज तक कभी भी न बनाया हो। आमतौर पर बालकों को ऐसा वाक्य कुछ चिंतन करने के रास्ते पर लगा देता है। किंतु इस बार मैं फेल हुआ। फिर यह कहकर कोशिश कीः आज तुम अपनी चित्रकला बही को पूरा–पूरा देखो और मुझे बताओ कि आज तक तुमने कितने प्रकार के चित्र बनाए ? मैंने बार–बार उसके पास बैठकर इस बात को समझने की कोशिश की कि वह हमेशा एक ही प्रकार के चित्र बनाता है। मैंने कहाः आज कुछ नया बनाओ। इसमें भी मैं फेल हुआ।

बगीचे में गोशाला के चारे के लिए सूर्यमुखी का खेत लगाया गया था। पूरा खेत फूलों से भरा था। मुझे सूझा कि जब यह सूर्य जैसा चमकता हुआ खेत मुझे स्पर्श कर रहा है, तो देखूं, बच्चों पर इसका क्या असर पड़ता है। अगले दिन वही टोली आई, जिसमें यह बच्चा था, जिसका जिक्र हम कर रहे हैं। वर्ग में आते ही सैर के लिए जाने का सुझाव जैसे मैंने रखा, सब खुश हो गए। एक बच्चे ने कहाः हम अपने रंग और बही भी लेते चलेंगे। मैंने कहाः नहीं, जो कुछ चित्र बनाना है, आकर बनांएगे। अभी तो वहां जाकर खेलेंगे और मजा करेंगे। पहले से ही मैंने इस धरती पर उतरे हुए सूरज का किस्सा सुना दिया। बालक, जिनमें से अधिक ने वह खेत नहीं देखा था, उत्सुक हो उठे। हम कूदते–खेलते खेत में पहुंचे। दूर से ही सूर्यमुखी का खेत आह्वान करने लगा। बच्चों को पूर्ण स्वतंत्रता थी। वे बंदरों की तरह खेत में घुस गए। मैंने केवल एक ही वाक्य कहाः भकुछ भी चित्र बनाओ, किंतु ऐसी चीज का बनाओ, जिसको देखकर तुम्हारा मन कभी खूब आनंदित हुआ हो। कईयों ने सूर्यमुखी के चित्र बनाये। उनमें से वह बालक भी था। उस दिन उस बालक का हृदय खुला। उसे शायद अनेक दिनों के बाद दिखा कि उसके रास्तेवाला मकान को छोड़कर दुनिया में और भी कुछ है।

इसका अर्थ यह है कि यह बार–बार एक ही चित्र बनाने की जो समस्या है, वह केवल कला–शिक्षा की समस्या नहीं, बल्कि आम शिक्षा की समस्या है। शिक्षक इसे निमित्त बनाकर इससे लाभ भी उठा सकता है और बालक की कल्पना–शक्ति भी जगा सकता है।

तरह–तरह के माध्यम जरूरी

उपलब्ध साधनों में चुनाव के अभाव के कारण भी कुछ रूकावटें आ जाती हैं। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि साधन का चुनाव व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर करता है। एक ही माध्यम मे हमेशा ही अपने भावों का प्रकटन करते रहने में बालक अरुचि महसूस करने लगते हैं। बच्चे हमेशा नवीनता चाहते हैं और उन्हें जो नए–नए अनुभव मिलते रहते हैं, उनका प्रकटन हमेशा एक ही माध्यम द्वारा नए–नए ढंग से हो नहीं सकता। इसलिए भी आत्म–प्रकटन के लिए माध्यम बदल–बदल कर काम करना जरूरी होता है। यही कारण है – जो पहले ही कहा गया है – कि शाला में आत्म–प्रकट के लिए तरह–तरह के माध्यम रहने चाहिए। इससे बच्चे अपनी भावनाओं को जब जिस साधन से चाहें, प्रकट कर सकेंगे। चित्र पानी के रंग से न बनाकर सूखे रंग से या पेपरकट या लीनो–कट, वुड–कट आदि से बनाने की छूट और उन माध्यमों का इंतजाम होना चाहिए। यह जरूरी नहीं कि बच्चे हमेशा कागज पर ही चित्र बनाएं। अगर शाला में मिट्टी की मूर्ति बनाने का इंतजाम होगा, जो बालकों को मूर्तियां बनाने की प्रेरणा भी मिलेगा। जहां मिट्टी के बर्तन चाक पर या सीधे हाथ से बनाने के साधन और उसकी शिक्षा का इंतजाम होता है, वहां बच्चे उसमें खूब रुचि लेते हैं।

बालक की कल्पना–शक्ति को प्रोत्साहन देने के लिए निम्नलिखित पद्धतियों का प्रयोग किया जा सकता है।

कहानी चित्रण

बच्चों की पूरी टोली को कोई सरल कहानी सुनाना और उसके बाद उस कहानी का चित्रण करने को कहना। कहानी बालक स्वयं भी सुना सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि दो–तीन बालक अलग–अलग कहानियां सुनाएं और टोली उनमें से एक कहानी चित्रण करने के लिए चुन ले। इस पद्धति से बालकों की कल्पना शक्ति को व्यायाम मिलेगा। जिन्हें कोई विषय नहीं सूझ रहा हो, उन्हें विषय मिलेगा।

इसी को और भी असरदार बनाया जा सकता है। शिक्षक बालकों को सरल सुंदर ढंग से बैठाए और उनसे आंख मूंदकर दो मिनट शांत रहने को कहे। जब बालक शांति से आख बंद कर लें, तो वह उन्हें कोई कहानी या अपना कोई अनुभव इस प्रकार वर्णन करके कहे कि वह दृश्य उनके समाने–सिनेमा की भांति चलने लगे। अपने अनुभवों में आकारों का विस्तृत वर्णन करें, रंगों को सादृश्य के साथ बताए। गंभीर आवाज में कभी अभिनय के ढंग से भावना के साथ वर्णन करने से बालकों के मन में चित्र खिंच जाता है। कल्पना दौड़ने लगती है।

चित्रों के लिए विषय

चित्रण के लिए दूसरे प्रकार के विषय भी दिए जा सकते हैं (चित्र संख्या 38 और 49)।

उदाहरणार्थ :

1. तुम अपने माता–पिता के साथ सैर के लिए जा रहे हो।
2. अपने छोटे भाई या बहन को स्कूल ला रहे हो।
3. सारा परिवार मिलकर खेत में धान लगा रहा है।
4. गांव के एक उत्सव में तुमने क्या हिस्सा लिया?
5. तुम अकेले प्रकृति–दर्शन के लिए गए और तुम्हें वहां सबसे अच्छा क्या अनुभव हुआ?
6. तुम्हारे गांव के अखाड़े में कुश्ती का खेल।
7. पिछले हाट–बाजार में क्या सबसे अच्छा लगा?
8. शाला में सामूहिक सफाई का काम।
9. तुम अपनी टोली के साथ सैर पर जा रहे हो।

10. तुम अपनी शाला का मकान उत्सव के लिए सजा रहे हो।

11. उस दिन जो नट का खेल हुआ।

12. शाला की बाल–सभा में तुम भाषण कर रहे हो।

इस प्रकार के अनेक विषयों को मौका देखकर इस्तेमाल किया जा सकता है। एक बार का अनुभव है कि चौथा वर्ग मेरे पास चित्र–कला के लिए आया करता था। पांच–छह बार ऐसा मौका हुआ कि जब भी उस वर्ग के बच्चे आते थे, तभी खूब वर्षा होती थी। एक दिन बालक वर्ग में आते ही हंसी–मजाक में कहने लगे कि ऐसा क्यों होता है? मुझे सूझा और मैंने कहा : वर्षा कहती है कि तुम लोग इतनी बार चित्रकला–वर्ग में आते हो, सुंदर–सुंदर चित्र बनाते हो, किंतु मेरा क्यों नहीं बनाते। जब तक नहीं बनाओगे, मैं तुम्हें भिगाती ही रहूंगी। सब बालकों ने उत्साह के साथ कहा : अच्छा, हम वर्षा का ही चित्र बनाएंगे। हमने चित्र का विषय रखाः वर्षा का एक दिन (चित्र–संख्या 49)।

इस पद्धति में एक बात ध्यान रखने की है। चाहे कितनी भी कुशलता के साथ चुनाव किया जाए, उसी विषय का चित्र बनाना है, इसका आग्रह कदापि नहीं किया जाना चाहिये। हो सकता है कि टोली के कुछ बालक कुछ और ही चित्र बनाएं। शिक्षक ने विषय चुनने में मदद की और उसके लिए आवश्यक भूमिका तैयार कर दी, तो बस है। जोर देने से बालकों की रुचि नष्ट हो सकती है।

कभी–कभी एक ही विषय के अलग–अलग पहलुओं पर टोली के बालक अलग–अलग चित्र बना सकते हैं। अगर एक लंबी कहानी है, तो जितने बालक हों, उतने चित्र बनाकर पूरी कहानी चित्रित की जा सकती है। यह एक संपूर्ण प्रोजेक्ट हो सकता है। पुस्तक बनाने के लिए एक प्रयोग का जिक्र बच्चों की नजर से शीर्षक वाले अध्याय में किया गया है। सामूहिक कार्य का यह एक बहुत अच्छा तरीका है। जो चित्र बनाना चाहें, वे चित्र बनायें, कुछ सुंदर ढंग से कहानी या लेख जो कुछ भी हो लिखें, कुछ पुस्तक की जिल्द बनायें। इस प्रकार शाला के समग्र जीवन के साथ चित्रकला–प्रवृत्ति का सुंदर मेल बैठ सकता है। भाषा, समाजशास्त्र आदि सभी विषय आ जाते हैं। यहां तक होना चाहिये कि जो काम वर्ग में हो रहा हो, उसके साथ पूरा–पूरा समन्वित कार्यक्रम अनेक मौकों पर बनाया जाय।

सामूहिक कार्यों में एक पद्धति हमने अनके बार इस्तेमाल की है। उससे खूब लाभ हुआ है। बालकों को भी वह बड़ी रूचिकर लगती है। एक खूब बड़े कागज पर सारी टोली मिलकर एक चित्र बनाती है। चित्र क्या बनेगा, किसी को कल्पना भी नहीं होती। क्रम से बालक एक–एक करके आते हैं और रंग से भरी कूंची एक बार कागज पर रखकर जो कुछ खींच सके, खींचते हैं। रंग जो उन्हें पसंद आए, ले सकते हैं। कूंची भी पतली, मोटी–हर तरह की रखी जाती है। परंतु एक बार हाथ उठ गया, तो ब्रश रख देना पड़ता है। सभी बालकों की चेष्टा यह रहती है कि चित्र कुछ आकार ले, इसलिये अधिक कल्पनाशील बालक चित्र को रूख देने का काम करते हैं। कुछ देर में जब चित्र में कुछ बन जाता है, तो सभी एक–एक टच (कूंची का एक दाग) देकर चित्र पूरा करते हैं। इसमें शिक्षक भी हिस्सा लें, तो अच्छा होता है। चित्र बनाना तो होता ही है, परन्तु सब मिलकर एक ही नमुने पर आखिर पहुंचे, यह सबकी चेष्टा रहती है, जो बड़ी बात है। हर एक के मन में तरह–तरह की कल्पना रहते हुए भी आखिर एक ही चित्र बनता है। इस प्रयोग की यही विशेषता है। चित्र सबने मिलकर बनाया, यह भी बालकों के लिए बड़े गर्व की बात होती है।

समालोचना

अगर शिक्षक समालोचना करेगा, तो बालक पर दबाव पड़ेगा। परंतु अगर बालक स्वयं आपस में एक–दूसरे के चित्रों की समालोचना करेंगे, तो उससे वे खूब सीख सकते हैं। आपस में सामुदायिक ढंग से समालोचना खूब काटने वाली होने के बावजूद वह न्यूनतम भाव (इन्फीरियोरिटी काम्प्लेक्स) नहीं देगी। वर्ग के अंत के दस मिनटों में बालकों को अपने–अपने चित्र दीवार पर ठीक क्रम से और सजाकर लगा देने के लिए कहा जाएगा। एक–एक

करके सभी अपना—अपना मंतव्य हर चित्र के बारे में दें। इससे चित्रकार अपनी गलतियों को समझेगा। बालक बालक की दृष्टि से समालोचना करेंगे, इसलिये वह अधिक स्वाभाविक होगी।

कला—वर्ग और समय—पत्रक

शाला में चित्र—कला आदि का कार्यक्रम आमतौर पर दो प्रकार से नियोजित किया जायेगा। एक तो चित्रकला का निश्चित समय हो, यानी बच्चों को हफ्ते में अमुक परिमाण मे कला—प्रवृत्तियों के लिए समय मिले। दूसरा यह कि बच्चे जब भी कला—प्रवृत्तियों में भाग लेना चाहें, उन्हें कला—वर्ग में जाने की छूट हो। इस प्रकार आमतौर पर बालकों के मन में जब वे कला का काम करने जाते हैं, तो योजना रहती ही है। अगर शाला में कई प्रवृत्तियों के लिए इंतजाम होता है, तो मन की यह योजना बनाते समय अमुक माध्यम से काम करूंगा, यह भी निश्चित हो जाता है।

हमारे पास जब बालक आते हैं, तो स्वयं ही सब अपना—अपना काम चुन लेते हैं। कभी एक बालक बड़ा चित्र पानी के रंग से बनाता है, तो अगले वर्ग में वह मिट्टी के बर्तन बनाने का काम ले लेता है। इस तरह बच्चों को दो—तीन तरह के रंगों से, लीनो या काठ कटाई से, स्टेंसिल, पेपर—कट से चित्र बनाना, मिट्टी के बर्तन चाक पर या बत्ती—पद्धति से या मिट्टी से मूर्ति बनाना, अल्पना करना आदि कई माध्यमों से किसी में भी काम करने की गुंजाइश रहती है। ऐसा होने से एक ही माध्यम को हमेशा इस्तेमाल करने के कारण कल्पना—शक्ति के विकास में जो रूकावट आ जाती है, वह नहीं आयेगी।

कागज का नाप

बालकों का नवीनता की तरफ खूब ध्यान रहता है। एक छोटी—सी बात है, किंतु वह शिक्षक को बालकों में रूचि पैदा करने में मदद कर सकती है। जिन कागजों को चित्र के लिए इस्तेमाल किया जाता है, उन्हें शिक्षक आमतौर पर एक साइज का काटकर रख देते हैं। इससे नये चित्र के लिए छोटा या बड़ा, चौकोन या लंबाकार आदि चुनाव करने के लिए बालकों को कोई गुंजाइश नहीं रहती। हमेशा वही साइज और उसी परिमाण का चित्र बनाने में मजा नहीं आता। इसलिये बच्चों को चित्र बनाने के लिए कागज अलग—अलग साइज और परिमाण के होने चाहिये। जब वे कागज लेना चाहें, तो किस साइज का और किस परिमाण का लेना है, यह वे स्वयं निश्चित करें।

शिक्षक को यह खयाल रखना पड़ेगा कि कोई बालक ऐसा तो नहीं है, जो हमेशा छोटे—छोटे कागज ही लेता है। अगर कोई ऐसा हो, तो उसे बड़े शीट लेने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिये। आजकल इस क्षेत्र में काम करने वाले सभी शिक्षक और विशेषज्ञ यही कहते हैं कि बालकों को बड़े—बड़े चित्र बनाने की आदत डालनी चाहिये। इसका कारण है कि बड़ी ड्राइंग बनाने में हाथ खोलकर निःसंकोच काम करना पड़ता है। इससे बालक का हाथ भी सुधरता है और अंदर का संकोच भी चला जाता है। साथ ही उससे चित्र में जिस देश—विन्यास के बोध की आवश्यकता होती है, उसका विकास होता है।

बड़े—बड़े कागज इस्तेमाल करने में जो सबसे बड़ी समस्या आती है, वह है कागज की कीमत। हमारे देश के एकआध स्कूलों को छोड़कर शायद ही कोई स्कूल होगा, जो इतना आर्थिक भार उठा सके। किंतु हम यहां इस बात का विशेष तौर पर खुलासा करना चाहते हैं कि यह जरूरी नहीं है कि बच्चों को कीमती कागज दिये जाए। हमने तो देखा है कि पुराने अखबार इसके लिए बहुत उपयोगी होते हैं। अखबारों की ऐसी शीट लेनी चाहिये, जिन पर कोई फोटो या विशेष दिखनेवाला विज्ञापन न हो। ऐसे अखबार पर बड़े—बड़े ब्रश से सुंदर चित्र बन सकते हैं। इससे यह खयाल नहीं होना चाहिये कि ऐसा करने में कुछ हलकापन है। कभी—कभी अगर आर्थिक संभावना हो, तो न्यूजप्रिंट का कागज, जो खूब सस्ता होता है, बालकों को चित्र बनाने के लिए देना अच्छा होगा।

बड़े चित्र बनाने के बारे में एक और बात है। यह विचार की 'बालकों का हाथ खुले और संकोच खतम हो,' यूरोप आदि देशों में जनमा। इसका कारण यह है कि बालकों को वहां इस तरह 'हाथ खोलकर', ड्राइंग आदि

करने का मौका कम मिलता था। किंतु हमारे देश में जो रंगोली और अल्पना की परंपरा है, उससे यह प्रश्न स्वयं ही काफी हद तक हल हो जाता है। फर्श पर खूब बड़ी–बड़ी अल्पना करते समय ऐसे ढंग से हाथ चलता है, जो बड़े–से–बड़े कागज पर भी नहीं चल सकता। इसलिये हमें इस बात पर इतना जोर देने की आवश्यकता नहीं, जितना दूसरे देशों में लोग देते हैं। फिर भी इसका महत्व कम है; ऐसी बात नहीं। बल्कि यह ख्याल रहना चाहिये कि कागज जितना भी हो सके, बड़ा दिया जाये, क्योंकि आदमी, जानवर और दृश्य आदि के चित्र भी खुलकर बनाने चाहिये। तभी तो देश के बोध का विकास होगा।

कागज की लंबाई–चौड़ाई

देश–बोध के लिए कागज की लंबाई–चौड़ाई में विविधता का होना बड़ा जरूरी है। चित्रों को तरह–तरह के परिणाम की भूमि पर बनाने से ही देश–संयोजन की नयी–नयी समस्याओं का सामना करने से उसका ठीक विकास होता है। मुझे एक बार छापाखाने से कागज के लंबे–लंबे कुछ टुकड़े मिल गये थे। उन्हें लाकर कला–भवन में बालकों के उपयोग के लिए रख दिया। उसे देखते ही उस बालक को लंबी रेलगाड़ी बनाने की बात सूझी। उसने गाड़ी का इंजन और दो डिब्बे बनाये। और बच्चों ने भी ऐसा ही अनुभव लिया और एक दिन तो देखा कि बालक 6–7 टुकड़ों को लंबाई में चिपकाकर जोड़े जा रहा है। सारा समय बैठकर उसने एक 9–10 फुट लंबी रेलगाड़ी बनायी। साधन की विविधता के कारण विविध प्रकारों और विविध रास्तों से आती है। शिक्षक को इससे फायदा उठाना चाहिये।

पर्सपेक्टिव का प्रश्न

वास्तविकता–परिचय–काल के अंत के समय ऐसी एक अवस्था आती है, जबकि बालक को अपने चित्रों में गहराई का भान देने की जरूरत होती है। तब उसे वस्तुओं को केवल लंबाई और चौड़ाई में ही बैठाने से संतोष नहीं होता; बल्कि गहराई में भी वस्तुएं बैठायी जानी चाहिये, इसका बोध होने लगता है। काफी बालक तो ऐसे होते हैं, जो अगर वातावरण ठीक रहा, तो इस परिस्थिति का मुकाबला अपने–आप कर लेते हैं (चित्र–संख्या 49 और 54)। किंतु कुछ बालकों को इस समय मदद की जरूरत महसूस होती है। अगर इस समय उचित मदद न मिले, तो संभव है, बालक हताश हो जाय और चित्रकला की प्रवृत्ति में अरूचि महसूस करने लगे। ऐसे मौके पर निरीक्षण करने की शक्ति को सूक्ष्मता के साथ बढ़ाने का मौका मिलना चाहिये।

बालक आकर कहता कि उसे बगल वाली दीवार तो दिखती है, लेकिन चित्र कैसे बनाये, यह नहीं जानता या फिर कहता है : यह तो ऐसा लगता है कि पहाड़ पेड़ के ऊपर है, वह तो सचमुच पेड़ के पीछे है। कैसे बनाऊं? ऐसे मौके पर शिक्षक क्या करे? क्या बालक को चित्र बनाकर दिखाए या उसे उस तरह के पर्सपेक्टिव वाले चित्र दिखा दे? ये सब बातें बालक को कमजोर बना देनेवाली होती हैं। उसे तो परिस्थिति का मुकाबला करनेवाला बनना है। इसलिये हमारा काम है कि उसकी निरीक्षण–शक्ति और उसके मानसिक तर्कवाद को विकसित करने की पद्धति उसे दिखाये। चित्र बनाना नहीं, बल्कि चित्र बनाते समय जो समस्याएं आती हैं, उन्हें हल करने के लिए निरीक्षण के द्वारा परिप्रेक्षण के प्राथमिक सिद्धांत को स्वयं ही ढूंढ लेने की कोशिश करनी चाहिये।

आमतौर पर 12–13 साल की आयु में जब इस पहलू पर कुछ मार्गदर्शन की आवश्यकता हो, परिप्रेक्षण के सरल नियमों का परिचय दिया जा सकता है, किंतु ऐसे ही बालक को, जो स्वयं उसकी आवश्यकता महसूस करे। कोई खास चीज पास होती है, तो बड़ी दिखती है और अगर वह दूर चली जाती है तो छोटी दीखने लगती है। जैसे – रेल की पटरी। दो पटरियों के बीच खड़े होकर अगर दूर देखा जाय, तो ऐसा दीखता है कि दोनों पटरियां आपस में मिल जाती हैं। सड़क के किनारे के दूर वाले पेड़ छोटे दीखते हैं। ऐसे कई प्रसंगों पर इस नियम का परिचय होता है। कभी–कभी बालक किसी चौकोनी वस्तु के चित्र में गहराई दिखाना चाहता है, तो बाजूवाली दीवारों को टेढ़ा बनाता है। जब तक इस तरह का चित्र बनाने में बालक को संकोच नहीं होता, तब तक तो मानना चाहिये कि उसकी अभी तक वह अवस्था नहीं आयी, जबकि वह इसे गलती समझने लगे किंतु यह खयाल हो जाने के समय कि चित्र ठीक नहीं बन रहा है, उसे इस नियम की आवश्यकता महसूस होने लगती है। चौकोनी

चीजें, जैसे –मकान, पेटी, आलमारी आदि समतल स्थान पर सीधी खड़ी हों, तो उनके कोने, चाहे उन्हें किसी भी कोण से देखा जाय, भूमि पर लंब बनाते हुए ही दीखेंगे।

बालक जब चाक्षुष अनुभवों को चित्र में दर्शाना चाहता है, तो उसे इस तरह के नियमों को बड़ी सरलता के साथ बताना चाहिये। वह आमतौर पर 12–13 वर्ष की आयु से पहले जरूरी नहीं होता। कुछ ऐसे बच्चे होंगे, जो बिना पर्सपेक्टिव के बोध का चित्र बनाना चालू रखेंगे। यह अच्छा लक्षण है, क्योंकि सच्ची कला के लिए पर्सपेक्टिव की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके बारे में शिल्प–गुरू नन्दलाल बसु ने कहा है : परिप्रेक्षित विज्ञानसम्मत नियम का उल्लंघन करके भी प्राच्य और प्रतीच्य में उच्च कोटि के शिल्प का सर्जन हुआ है, जो स्वतः प्रमाणित है; इसका कारण संक्षेप में कहा जा सकता है कि उन क्षेत्रों में विषय के साथ विषयी का अर्थात शिल्प की विषय–वस्तु के साथ शिल्पी का एकात्म–बोध हो गया है।

क्राफ्ट का काम

क्राफ्ट का बड़ा महत्व है। कुछ बच्चों का रूझान दस्तकारी की तरफ अधिक होता है। 8–9 साल की उम्र में ही उन्हें ऐसी प्रवृतियां देने का प्रयत्न करना चाहिये, जिनके द्वारा चित्रकला के साथ–साथ दस्तकारी की रूचि को भी आत्म–प्रकटन का मौका मिले। और चीजों के साथ–साथ लीनो कटाई, काठ कटाई और रंगीन कागज काटकर या हाथ से फाड़कर चित्र बनाने की प्रक्रिया में चित्रकला और दस्तकारी दोनों का काम बड़ी सरलतापूर्वक हो जाता है। इतना ही नहीं, इस तरह के साधनों और पद्धति के द्वारा बच्चों का आकार–बोध भी स्पष्ट होने लगता है (देखिये, लीनो प्रिंट, चित्र–संख्या 26, 27 और 29)।

कुछ और बड़ा होने पर, जब कि बालक वास्तविकता–प्रधान–अवस्था में आ जाता है, तब दूसरी दस्तकारियों द्वारा सृजनात्मक प्रवृत्ति दी जानी चाहिये। जब कि बच्चे के मन में ड्राइंग और पेंटिग के बारे में थोड़ा संकोच पैदा होने की संभावना होती है, बल्कि कुछ बच्चे तो जैसा जिक्र किया जा चुका है, उसमें रूचि लेना बंद कर देते हैं, उस समय दस्तकारी द्वारा बालक की सृजनात्मकता को प्रकट होने में मदद होती है। वह कोई भी दस्तकारी हो सकती है पर उसके पीछे दृष्टि कलात्मक हो और वह बालक की अपनी रूचि द्वारा चुनी गयी हो।

भांत (पैटर्न) बनाने का महत्व

जीवन की हर चीज में आलंकारिक भांत का इतना स्थान है कि उसे भूलना या इच्छा करके छोड़ना असंभव है। हर वस्तु में डिजाइन का प्रश्न आता है। डिजाइन में संतुलन, सिमित (सिमिट्री) का सवाल आता है। चित्रकला, मूर्तिकला आदि कलाओं में संतुलन के बारे में भान होना अत्यंत आवश्यक होता है। दस्ताकारी में भी भांत का बड़ा महत्व है। आर. आर. टामलिनसन अपनी पुस्तक 'पिक्चर एंड पैटर्न मेकिंग बाई चिल्ड्रन' में भांत (पैटर्न मेंकिंग) के बारे में लिखते हैं :

"सबसे अभिलक्ष्य विकास, जो स्कूल में कला–शिक्षा के हाल के वर्षों में हुआ है, वह भांत (पैटर्न) सिखाने के बारे में है। भांत निकालना (पैटर्न मेकिंग) आत्म–प्रकटन का एक स्वरूप है और उसका महत्व चित्र बनाने में, डिजाइन के साथ है। भांत निकालना कुछ व्यक्तियों के लिए चित्र द्वारा प्रकटन (विजुअल एक्सप्रेशन) करने की पूर्वी कला की अनेक शैलियों की तरह स्वयं में एक संपूर्ण भाषा हो सकती है। भांत बनाने के लिए जिस बोध का हमारी शालाओं में (इंग्लैंड में) विकास हो रहा है, उसका बच्चों के चित्र बनाने की शक्तियों पर बड़ा लाभप्रद असर पड़ा है। इससे बालकों और किशोरों में चित्रबोध का निर्माण होगा और उसकी पुष्टि होगी।

इस दृष्टि से हमारा देश बड़ा भाग्यवान है। हिन्दुस्तान के लगभग हर प्रदेश में किसी–न–किसी आलंकारिक सजावट की परंपरा है – बंगाल, बिहार, उड़ीसा आदि में अल्पना; उत्तर प्रदेश, राजस्थान में मांड़नी; दक्षिण में रंगोाली, मुग्गू और कोलम्। हमारे ग्रामीण जीवन में अभी भी अच्छे परिणाम में भांत का महत्व है। उसका लाभ बालकों को पूरा–पूरा मिलना चाहिये। बालक पारंपरिक अल्पना, रंगोली आदि तो करेंगे ही, पर उन्हें अपने मन से नये–नये भांत डालने की वृत्ति देनी चाहिये। नये संदर्भ में नये–नये आकारों का उपयोग किया जाना चाहिये।

प्रकृति से खोजकर आलंकारिक आकारों का निर्माण करना एक उद्देश्य होना चाहिये। एक पत्ता एक पेड़ का और दूसरा–दूसरे पेड़ का लें, उसे दोहरा कर अच्छे किनारे बनते हैं। जीवन की और प्रवृत्तियों के साथ इसका अच्छा–खासा योग है। बुनाई के लिए, लकड़ी–खुदाई आदि के लिए उसकी जरूरत पड़ती है। शिक्षक को अपनी इस दृष्टि में विकास करना चाहिये। उत्सवों की सजावट के समय हम इस प्रकार की सजावट खूब कर सकते हैं। मैदान में, जहां जमीन पर अल्पना नहीं कर सकते, वहां तरह–तरह की रंगीन मिट्टी, चूना, रेती, कोयले का चूरा, लाल रेती और पत्तों, फूलों तथा फूलों की पंखड़ियों से सजा–सजाकर बड़े सुंदर भांत बनाते हैं।

भांत बनाने के सिद्धांतों का अध्ययन शिक्षक को केवल शिक्षा–क्रम तैयार करने में मदद नहीं करता, बल्कि उसे कला–प्रवृतियों को समझने में मदद करता है। ये सिद्धांत प्रकृति में से खोजकर निकाले गये होते हैं। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण का स्थान होता है, उसी तरह कला में डिजाइन, भांत आदि के सिद्धांतों का होता है। टामलिनसन उसी पुस्तक मे ंइस तरह के नौ सिद्धांतों का जिक्र करते हैं, पर हम उनमें से अत्यंत आवश्यक दो–तीन का यहां जिक्र करेंगे।

भांत में कुछ छंद और पुनरावृत्ति का महत्व होता है। किनारों आदि में पुनरावृत्ति अधिक होती है। जहां भांत–समिति (सिमिट्री) अधिक होती है, वहां पुनरावृत्ति का स्थान अधिक है। जहां 'रेपीटीशन' (पुनावृत्ति) कम होती है वहां छंद का महत्व है। जैसे संगीत में बार–बार सम आकर पड़ता है, वैसे ही आलंकारिक चित्र–कला का छंद होता है। बालकों को तरह–तरह के भांत बनाने पर इसका भान हो सकता है।

इस अभ्यास के लिए तरह–तरह के माध्यम इस्तेमाल किये जा सकते हैं। कागज पर या टीन पर आकार काटकर उन्हें स्टेंसिल–छपाई–पद्धति से छापकर किनारों, पल्लों और फर्श आदि के भांत तैयार किये जाते हैं। छोटे बच्चों के लिए अति सरल और कलात्मकता का विकास करने वाला एक तरीका आलू काटकर ब्लाक तैयार करने का है (चित्र संख्या 15)। इसे 'पोटेटो–प्रिंटिग' कहते हैं। बालक आलू को आधा–आधा काटकर सुंदर ब्लाक तैयार कर लेते हैं और एक कपड़े का पैड बनाकर उसमें रंग डालकर 'स्टाम्प–पैड' की तरह कागज पर अलग–अलग क्रम से छाप सकते है।

दूसरा सिद्धांत भांत के देश–विन्यास का होता है। इसमें भांत की छुटी जगह और उस पर बनाये गये आकारों का आपसी संबंध चरित्र और परिणाम का होता है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि एक हिस्सा तो प्राकृतिक आकार से और दूसरा आलंकारिक आकार से बना है। इसके सिलसिले में सामंजस्य का होना अत्यंत आवश्यक है, यानी भांत के आकारों का चरित्र एक ही हो।

इसी तरह आकार और देश का प्रश्न है, दोनों में सामंजस्य चाहिये। दोनों का आपसी संबंध आंखों का और फलतः मन को अच्छा लगने वाला होना चाहिये।

तीसरा सिद्वांत, जो शिक्षक के मन में स्पष्ट होना चाहिये, वह है अनुकूलता का। भांत जिस उपयोग के लिए बने, वह उसके लिए अनुकूल हो। अगर बालक फर्श के किनारे पर अल्पना करना चाहता है, तो अल्पना किनारे और जिस माध्यम से वह बना रहा है, उसके अनुकूल बने। रंगोली की डिजाइन अल्पना में नहीं हो सकती। साड़ी के पल्ले के लिए जो भांत बनेगी, वह कमीज के कपड़े के लिए लागू नहीं हो सकती। लकड़ी पर खुदाई करने के लिए जो भांत होगी, वह छपाई करने के लिए अनुकूल नहीं हो सकती इस तरह यह अनुकूलता का सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है।

इन सब सिद्धांतों को समझने के लिए शिक्षक को खूब अध्ययन करने की आवश्यकता होती है – खासतौर पर उनको, जो किशोर–अवस्था के बालकों के शिक्षक हों।

भांत के ऊपर और भी अधिक जोर आज इसलिये देना है कि हमारी शिक्षा की सब प्रवृत्तियों और उद्योगों में भांत–डिजाइन की आवश्यकता पड़ती हैं उसे अनदेखा या टाला नहीं जा सकता। जो कला–शिक्षक इस पहलू की अवहेलना करेंगे, वे कला के महत्व को समझते हैं, यह नहीं कहा जा सकता।

क्लास–रूम

आदर्श तो यह होगा कि शाला में चित्र–कला, मूर्ति–कला आदि के लिए एक अच्छा कमरा खूब रोशनी वाला रहे। पर गांवों की अनेक शालाएं ऐसी होती है, जिनमें पूरी–पूरी कक्षाओं के लिए भी कमरे नहीं होते। ऐसी हालत में किसी एक कमरे को या जहां एक ही कमरा हो, उसे ही, ऐसा व्यवस्थित करके रखना चाहिये कि बालकों को काम करने की प्रेरणा मिले। कमरे की दीवारों पर बालकों के बनाये हुए नये–नये चित्र लगे हों और नये चित्र बनते ही वे बदल दिये जाए। प्रदर्शनी सजाने का यह काम बालक स्वयं ही करें। दीवार पर बांस की चटाइयों या और कुछ ऐसी स्क्रीनें (चटाइयां फ्रेम में लगाकर) लगी हों, जिन पर साधारण बबूल के कांटों से चित्र लगाये जा सकें। इससे चित्र में छिद्र नहीं पड़ते और बिना एक कौड़ी खर्च किये हुए चित्रों के लिए ऊंची रूचि की पृष्ठभूमि (बैकग्राउंड) तैयार हो जाती है। मामूली खजूर की चटाई और बांस के फ्रेम से सुंदर काम होता है। बालक आसानी से उन पर अपने चित्र लगा सकते हैं। चित्र लगाने में समिति, संतुलन आदि – कौन–सा चित्र कहां, किस चित्र के साथ लगाना है, इस सबका अभ्यास होता है। दीवारों पर बच्चों के अपने चित्र व्यवस्थित लगे रहें, तो उन्हें उत्साह मिलता है।

कमरे के एक तरफ चित्रकला का स्थान खूब सजा हुआ होना चाहिये। रंग, कूची आदि साफ–सुथरे, सजे हुए होने चाहिये। साधन तैयार हैं, ऐसे सजे हों, तो बालक को आह्वान देते हुए दिखाई देते हैं। बालक भी ऐसी हालत में आहान लेता है और हमेशा चित्र बनाने के लिए प्रस्तुत रहता है।

शिक्षक का काम है, बीच–बीच में दीवारों पर दूसरी जगह के बच्चों और अन्य कला–कृतियों के नमूने लगाकर प्रदर्शनी सजाना। इससे बालकों को हमेशा नयी–नयी प्रेरणा मिलती है। सारांश यह कि जितना शिक्षक का महत्व होता है, उतना ही स्थान और स्थान के वातावरण का होता है। अगर वातावरण ठीक होता है, तो शिक्षा भी अच्छी होती है। शिक्षक और वातावरण वाले अध्याय में हम काफी विस्तार से कह चुके हैं कि वातावरण तैयार करना शिक्षक का काम है, उसी पर शिक्षा का दारोमदार होता है ।

बालकों का मनोवैज्ञानिक प्रकार

सामान्य तौर पर दिये गये सुझाव और प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर बालकों की कला–शिक्षा का कार्यक्रम चल जायेगा। आम शिक्षक उतना भी कर लें, तो बालकों को काफी आनंद और तृप्ति का अनुभव दे सकेंगे। किंतु गहराई से अध्ययन करते रहने से शिक्षक अपने काम में वैज्ञानिकता ला सकता है। शिक्षा–शास्त्र का एक सिद्धांत है कि प्रकृतिजन्य व्यक्तिगत अभिरूचियां होती हैं। उनके अनुसार मनुष्यों के 'प्रकार' होते हैं। शिक्षा की योजना उन 'प्रकारो' का ध्यान रखकर करनी चाहिये, अगर एक व्यक्ति 'साहित्यिक प्रकार' का है, तो उसकी शिक्षा की योजना भी उसी आधार पर बननी चाहिये। कुछ लोग 'टेक्नीकल प्रकार' के या 'दस्तकार प्रकार' के हों ओर उन्हें 'साहित्यिक प्रकार' के व्यक्तियों के लिए जो शिक्षा का ढांचा होगा, उसमें डाल दिया जाय, तो उनकी शक्तियों का संपूर्ण विकास नहीं हो सकेगा।

इसी तरह मनोवैज्ञानिक कई प्रकार से वर्गीकरण करते हैं शिक्षकों को इस वर्गीकरण से लाभ उठाना चाहिये। अगर शिक्षक बालक का मनौवैज्ञानिक प्रकार समझ लेता है, तो उससे उसके काम को समझने और मार्गदर्शन करने में सुविधा होती है। शिक्षक अगर मनोवैज्ञानिक प्रकारों का महत्व समझ लेता है तो उसे बालक की शक्ति और उसके काम की दिशा दिखने लगती है। साथ ही बालक के लिए उसके मन में संवेदना भी उत्पन्न हो सकती है। क्योंकि वह समझ लेगा कि अमुक बालक अमुक प्रकार का है, तो उससे किसी दूसरे मनोवैज्ञानिक प्रकार के काम की अपेक्षा करना अनुचित होगा। यह विषय गहरा है। इसका विस्तार यहां करने की आवश्यकता नहीं है। जो शिक्षक इसका विशेष अध्ययन करना चाहते हैं, उन्हें परिशिष्ट–सहायक ग्रंथ में दी गयी पुस्तकों में काफी सामग्री मिल सकती है।

बालकों के चित्रों का रेकार्ड रखना

अपने काम में शास्त्रीयता लाने के लिए शिक्षकों को एक और काम करना चाहिये। बालकों के चित्रों का रेकार्ड नियमित रूप से रखा जाना चाहिये। प्रारंभिक चित्रों से लेकर जब तक बालक शाला में रहें, उनके चित्रों में से कुछ चुनकर नियमित फाइल में रखे जाएं। हर चित्र के पीछे बालक का नाम, चित्र बनाने की तारीख, टोली का नंबर और अगर हो सके, तो चित्र की क्रम–संख्या भी साफ अक्षरों में लिखनी चाहिये। अच्छा तो यह होगा कि एक बालक के चित्र एक साथ रखे जाएं, क्योंकि एकआध साल के बाद छंटाई संभव नहीं होती। कुछ ही ऐसे शिक्षक होंगे, जो उस काम को विशेष रूचि से कर सकेंगे। फाइलिंग का तरीका हर कोई अपने ढंग से बना सकता है।

यह जरूरी है कि चुनाव ठीक हो, जिससे बाद में वह केवल एक ढेर ही न बन जाय। अगर चित्र क्रमवार रखे होंगे, तो कभी भी बालक की प्रगति का स्पष्ट दर्शन एक नजर में ही हो जायेगा। बालक स्वयं भी अपने पुराने चित्र देखना चाहते हैं। उससे उन्हें लाभ होता है। ''मैं प्रगति पर रहा हूं'' या ''मैं हमेशा एक ही प्रकार का चित्र बना रहा हूं'' यह जानकारी उसे स्वयं की अपने चित्र–संग्रह को देखने से हो जायेगी। अनेक मौकों पर प्रदर्शनियों में चित्र रखने की आवश्यकता होती है। इसके लिए भी एक अच्छा संग्रह चाहिये। हमारे पास आज भी अनेक चित्र उन बालकों के हैं, जो अब सयाने और गृहस्थ हो गये हैं। जब वे उन चित्रों को देखते हैं, तो उन्हें बड़ा मजा आता है।

बालकों के चित्रों का विनिमय दूसरी शालाओं के बालकों के चित्रों से करने में उन्हें उत्साह मिलता है। इस प्रकार के चित्र–विनिमय अगर शालाओं के बीच होते रहें, तो बंधुत्व भी कायम होगा, साथ ही बालकों का कला–बोध भी विकसित होगा।

पठन सामग्री – 3

कला–परिचय

''गानेर भीतर दिये यखन
देखि भूवनखानी
तखन तारे चिनि, आमि
तखन तारे जानी।''

रविन्द्रनाथ

कला–परिचय कला–शिक्षा का एक अंग है। कला–परिचय का सामान्य अर्थ अपने देश की और अन्य देशों की कला–शैलियों से परिचय होना ही माना जाता है। परंतु हम कला–परिचय में कला–बोध को केवल उतना ही नहीं, बल्कि अधिक महत्व का स्थान देते हैं। इसलिये प्रस्तुत चर्चा में केवल कला–बोध का निर्माण करने के लिए क्या कार्यक्रम बनाया जा सकता है और कला–शैलियों आदि का ज्ञान, इन दोनों मुद्दों का जिक्र करेंगे।

कुछ उम्र होने पर, करीब–करीब किशोर–अवस्था तक पहुंचने के समय बालकों को प्राचीन और आधुनिक कला से परिचय हो, यह जरूरी है। छोटी उम्र में न तो उन्हें उसकी आवश्यकता होती है और न उससे उनके अपने कला–विकास में कोई लाभ ही होता है। हां, शायद कला–परिचय की दृष्टि से जरूर कुछ होता है। बच्चों की अपनी कला पर तो मैं सोचता हूं, उससे अगर कुछ होता भी होगा, तो वह नुकसान ही होगा। हमने कहा ही है कि बालक प्रौढ़ की कला का प्रभाव अच्छा नहीं होता। परंतु जब बालक किशोर–अवस्था के नजदीक पहुंचता है और उसे बड़ों की तरह काम करने की जरूरत महसूस होती है, तब उसे कला से परिचय कराना आवश्यक है।

यह परिचय दो प्रकार से होगाः मनुष्य का प्रकृति के साथ परिचय होना चाहिये। उसे प्रकृति के साथ एकरूपता का अनुभव होना चाहिये। इसलिये कला के माध्यम से प्रकृति तक पहुंचना और प्रकृति की मदद से कला को समझना, ये दोनों रास्ते हमें अपनाने होंगे।

एक बात स्पष्ट करना चाहता हूं। आमतौर पर जो ''आर्ट एप्रीसिएशन'' और ''कला इतिहास'' का शिक्षा–क्रम होता है, उसमें केवल जानकारी की बात ही होती है। एक व्यक्ति भारतीय कला का इतिहास खूब बारीकी से जानता है, वह उस पर पांडित्यपूर्ण पुस्तकें भी लिखता है। किंतु जब बाजार में चित्र खरीदने जाता है, तो वही कैलेंडरवाली तसवीरें पसंद करता है। राजपूत–शैली की हर तसवीर को देखते ही कह सकता है कि यह तो फलानी शैली या फलानी शताब्दी की है, परंतु उसके बैठकखाने में बाजारु तसवीरें लगी होंगी। ऐसे ज्ञान से कोई लाभ नहीं। हम तो कला–बोध चाहते हैं। सुदंर और असुदंर को समझने की विवेक–बुद्धि हो। वहीं पहली नजर में ही अपने बोध के द्वारा अच्छी कला–कृति में प्रवेश कर सके, ऐसी शक्ति का निर्माण करना है।

इस तरह की शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है, इसके बारे में नया लिखने की आवश्यकता हमें महसूस नहीं होती। कला–गुरू नन्दलाल बसु ने इसके बारे में अत्यंत मूल्यवान सुझाव रखे हैं। हम उन्हीं के शब्दों को यहां उद्धत करते हैं। यह उन्होंने आज के विश्वविद्यालयों को ध्यान में रखते हुए कहा था, पर हम अगर उन बातों को अपनी परिस्थिति और वातावरण मे लागू करें, तो इससे अधिक कोई सुझाव दिया नहीं जा सकता।

''पहली बात है, लड़कों के विद्यालयों, पुस्तकालयों, पढ़ने और रहने के कमरों में कुछ अच्छी–अच्छी मूर्तियां और दूसरे चारू और कारू शिल्पों के नमूने (नमूने न होने पर उनके अच्छे फोटो या प्रतिच्छवि) सजाकर रखने होंगे।''

''दूसरी बात है, अच्छे–अच्छे शिल्प–निदर्शनों के चित्र और इतिहास की सहज ही समझ में आने वाली लड़कों के योग्य पुस्तकें उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा यथेष्ट परिमाण में लिखानी होंगी।

''तीसरी बात है, चित्रपट की सहायता से बीच–बीच में स्वेदश और विदेश की चुनी हुई शिल्प–वस्तुओं से लड़कों का परिचय कराना होगा।

''चौथी बात है, बीच–बीच में उपयुक्त शिक्षकों के साथ जाकर लड़के निकटस्थ जादू घरों (संग्रहालयों) और चित्र–शालाओं में अतीत की शिल्पकीर्ति का निदर्शन देख आया करें। विद्यालयों से जब फुटबाल मैच खेलने जाने का कार्यक्रम हो सकता है, तो चित्र–शाला और जादूघर देख आना भी असंभव नहीं होगा। इस बात को याद रखना होगा कि एक अच्छी शिल्प–वस्तु को अपनी आंखों से देखने और समझने से शिल्प–दृष्टि जितनी जाग्रत होती है, उतनी सौ भाषणों के सुनने से नहीं होती। छोटी वय से अच्छे चित्रों, मूर्तियों को देखते–देखते कुछ समझकर, कुछ बिना समझे ही लड़कों की दृष्टि बनती रहेगी, अपने–आप ही उसमे शिल्प के भले–बुरे का विचार करने की शक्ति पैदा होगी और धीरे–धीरे सौंदर्य–बोध जाग्रत होगा।

''पांचवीं बात है, प्रकृति से लड़कों का संबंध स्थापित कराने के लिए भिन्न–भिन्न ऋतुओं में भिन्न–भिन्न उत्सवों का आयोजन करना। उस आयोजन में होगा–उन ऋतुओं के फल–फूलों का संग्रह और शिल्प तथा काव्य में उन ऋतुओं के संबंध में जो सुंदर रचनाएं हुई हैं, उनसे यथासंभव लड़कों का परिचय कराने की व्यवस्था।

''छठी बात है, प्रकृति में जो ऋतु–उत्सव हो रहे हैं, उनसे लड़कों का परिचय करा देना चाहिये। शरद में धान के खेत और कमल के वन, वसंत में पलास, सेंभल के मेले की, जिसमें अपनी आंखों से देखकर आनंद पा सकें, व्यवस्था करानी होगी। इन ऋतु–उत्सवों के लिए वन–भोजन और ऋतु–उपयोगी वेश–भूषा तथा खेल–कूद की व्यवस्था करनी होगी। प्रकृति से एक बार संबंध स्थापित हो जाने पर, उससे वास्तविक प्रेम करना सीख लेने पर लड़कों के हृदय में रस का उद्गम फिर कभी नहीं सूखेगा; क्योंकि प्रकृति ही युग–युग से शिल्पी को शिल्प–सृजन का उपादान जुटाती आयी है।

''अंतिम बात यह है, वर्ष में किसी समय विद्यालयों में शिल्प–सर्जन का एक उत्सव करना होगा। प्रत्येक विद्यार्थी को कुछ–न–कुछ शिल्प–वस्तु अपने हाथों से बनाकर उसमें श्रद्धा के साथ सम्मिलित होना होगा –वह शिल्प–वस्तु चाहे कितनी ही सामान्य क्यों न हो, लड़कों की सर्जनशक्ति की वस्तुएं उत्सव के अर्ध्यरूप में संगृहीत होकर सजायी रहेंगी। नृत्य, गीत, जुलूस आदि के द्वारा उत्सव को सर्वांग–सुंदर बनाने के लिए चेष्टा करनी चाहिये। उत्सव के लिए एक निश्चित समय ठीक कर देना कठिन है, देश–भेद से वह बदलेगा। बंगाल में शरद ऋतु ठीक मालूम पड़ती है।

शिल्प–गुरू की ये बातें स्पष्ट करती हैं कि कला और प्रकृति में कितना संबंध है। एक–दूसरे की मदद से ही दोनों समझे जा सकते हैं। इन सुझावों के द्वारा बालकों की शिक्षा तो होगी ही, पर शिक्षकों के लिए उन पर चिंतन, मनन और आचरण करने से सच्चा लाभ होगा। यह दृष्टि वही शिक्षक दे सकता है, तो स्वयं उसमें रत हो या कम–से–कम उस तरह की साधना में लगा हो।

कला–बोध के ऊपर कहे गये पहलू के साथ कला के इतिहास आदि पर ध्यान दिया जाय, तो उससे लाभ ही होगा। परंतु यह खयाल रहे कि केवल कला का पुस्तकीय ज्ञान होने से कला द्वारा जिस तरह के व्यकितत्व का निर्माण करने की बात सोची जाती है, वैसा अल्प मात्रा में भी होना असंभव है। वह तो सृजनात्मकता और संवेदना का विकास करने से ही निर्मित हो सकता है।

स्थायी कलाबोध तभी विकसित हो सकता है, जब कि उसके साथ जीवन का संबंध हो। जैसा कि पहले भी जिक्र किया है कि बुद्धि से व्यक्ति कला का इतिहास और किसी कला के अच्छे–बुरे पहलुओं को समझता हो, पर उसके अपने जीवन में सौंदर्य के कुछ दूसरे ही मापदंड काम करते हों, तो वह किस काम का! यानी मनुष्य की बुद्धि और उसकी रूचि (टेस्ट) में ऐक्य होना चाहिये। इसलिये प्रश्न है, शिक्षा के द्वारा सुरूचि का निर्माण

करना। इसके लिए ऊपर से जो सुझाव रखे गये हैं, उनके अलावा दो–चार बातें और सुझाना चाहता हूं।

कला–बोध का निर्माण करने का एक कारगर तरीका है, व्यक्ति को ऐसे काम देना, जिसमें उससे सौंदर्य–निर्माण की अपेक्षा हो। कक्षा का कमरा या छात्रालय का कमरा पूरा–पूरा खाली करके नये ढंग से सजाने का काम एक विद्यार्थी का या विद्यार्थियों की एक टोली को देना चाहिये। उपयोग की दृष्टि से कमरे का संगठन सरल हो। सजावट की दृष्टि से उसमें एकआध चित्र चुनकर ठीक जगह लगाना और फूलदान में ठीक ढंग से फूल सजाने तक का 'प्रोजेक्ट' आखिर तक किया जाय। उसमें सादगी और सजावट का सामांजस्य हो; रंग–मेल की दृष्टि पर पूरा–पूरा ध्यान दिया जाय। प्रोजेक्ट पूरा होने के बाद टोली के विद्यार्थियों से व्यक्तिगत तौर पर समालोचना की अपेक्षा हो, साथ–साथ सब मिलकर भी समालोचना करें इससे सजावट के मूल सिद्धांतों का अच्छा विस्तार किया जा सकता है। इसी प्रकार छोटी–छोटी प्रदर्शनियों का आयोजन, उत्सव–त्यौहारों के समय सजावट और नाट्यमंच आदि की सजावट में भी विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट दिए जाएं।

किसी व्यक्ति या राष्ट्र की रूचि और उसके सौंदर्य–बोध के स्तर का इस बात से भी पता चलता है कि वह टूटन 'वेस्ट–मेटीरियल' का उपयोग कैसे कर लेता है। इस सिलसिले में दो उदाहरण मेरे सामने आते हैंः एक तो जापान का और दूसरा बंगाल का कांथा बनाने की पंरपरा का। सुना है, जापान में टूटन से अनेक प्रकार की सुंदर–सुंदर चीजों का निर्माण कर लेते हैं कपड़ों की कतरनों से और लकड़ी के टुकड़ों से तरह–तरह की अत्यंत सुंदर गुड़िया बना लेना, कागज के छीजन से पेपर में से कूट का काम आदि वहां की विशेषताएं हैं। छोटे–छोटे बांस के टुकड़ों का इतना सुंदर उपयोग कर लेते हैं कि देखते ही बनता है। एक छोटी–सी–बांस की कमची को लेकर उसे तराश–तराशकर उस पर कुछ कॅलीग्राफी या चित्र बना लेना आमतौर पर देखा जाता है।

इसी तरह पुरानी धोतियों और साड़ियों को लेकर अत्यंत ऊंची रूचि की सुजनियां, कांथे बनाने की बंगाल की परंपरा भी इस बात की घोतक है कि वहां की स्त्रियां 'वेस्ट–मेटीरियल' लेकर उन्हें कैसे कला–कृतियों में परिणत कर सकती हैं। यही गुण है, जो कला–बोध का एक अंग बन जाना चाहिये। किसी शाला में इस तरह के 'वेस्ट–मेटीरियल' का कितना और कैसा उपयोग होता है, यह देखकर वहां की शिक्षा स्तर का पता चलता है। हमारी शिक्षा में ऐसे कार्यक्रम रखे जाने चाहिये, जिनसे बालकों को इस प्रकार की वस्तुओं का कलात्मक उपयोग करने की रूचि का निर्माण हो। इसके लिए प्रदर्शनियां भी रखी जा सकती हैं।

मनुष्य का बोध कल्पना के सूक्ष्म विकास के द्वारा भी बनता है। हमने अच्छी रूचिवाले ऐसे बहुत–से व्यक्तियों को तरह–तरह की अजीब चीजें संग्रह करते हुए देखा है। तरह–तरह के पत्थरों के टुकड़े, पेड़ की पुरानी टेढ़ी–मेढ़ी जड़ों या डालियों के टुकड़े इस तरह का आकर ले लेते हैं कि सूक्ष्म कल्पना वाला व्यक्ति उसमें अनेक प्रकार के रूप देख सकता है। इस तरह की चीजों में कुछ कल्पना– जगत का निर्माण कर लेना एक अच्छी ट्रेंनिग है। उससे व्यक्ति में बोध का सृजनात्मकता का विकास होता है। शाला में इस तरह की प्रवृत्तियों को उत्साह मिलना चाहिये।

आजकल 'प्रोग्रेसिव' शालाओं में एक और कार्यक्रम चलता है, अखबारों और पत्र–पत्रिकाओं से फोटो और चित्रों की कटिंग जमा करने का। विचार अच्छा है, परंतु उससे उददेश्य–सिद्धि तभी हो सकती है, जब कि वह कार्यक्रम सुरूचिपूर्ण हो। जैसे–तैसे भड़कदार चित्र काटकर अलबम में रख लिये, उससे तो रूचि बनने के बदले बिगड़ेगी।

इस कार्यक्रम के स्पष्ट दो भाग करने चाहिये। पत्र–पत्रिकाओं में से कुछ तो ऐसे चित्र संग्रह किये जाएं, जो सामान्य ज्ञान–विज्ञान से संबंध रखनेवाले हों। इनके भी अलग–अलग विषयों के अनुसार अलग–अलग अलबम बनाने चाहिये। टेक्नीकल दृष्टि के अलावा इसमें यह ध्यान रहे कि सब चित्र साफ और सुंदर हों। इनमें अधिकतर फोटो और डायग्राम आदि होंगे। फोटो हों, तो टेक्नीकल दृष्टि से अच्छे होने चाहिये। इस प्रवृति का दूसरा विभाग कला के दायरे का होगा। इसमें चित्र–कला, मूर्ति–कला, वास्तु–कला और दस्तकारियों के अच्छे–अच्छे नमूनों के फोटो या प्रिंट होंगे। इसके चुनाव का काम करना कुछ कठिन है। कठिनाई दो कारणों से है : एक तो किस चित्र को चुनना और किसको नहीं, यह काफी जानकारी के बाद सधता है। दूसरा, चित्र शायद सचमुच माना हुआ

अच्छा है, पर क्या वह प्रिंट चित्र के रंगों को सच्चाई के साथ दिखाता है या छपाई में उसके मूल रंग इतने बदल गये कि उसके सारे गुण समाप्त प्राय ही हो गये? इसलिये इस काम के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है। मेरा एक सुझाव इसके बारे में है। शाला में कुछ उच्च कोटि के प्रिंट हों, यह बात आसान नहीं हैं; क्योंकि ऐसे प्रिंट बड़े महंगे होते हैं। हर शाला के लिए खर्च करना संभव नहीं हो सकता। इसके लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि सरकारी पैमाने पर कुछ अच्छे–अच्छे सेट संसार की अलग–अलग कला–शैलियों के स्कूलों में घूमते रहें। यह घूमती प्रदर्शनी बीच–बीच में शिक्षकों और बालकों को देखने को मिले, यह उसका उद्‌देश्य हो। इस तरह की परंपरा बनने के बाद जो शिक्षक स्वाध्याय करके अपने स्कूल में पत्र–पत्रिकाओं से कटिंग द्वारा प्रिंट संग्रह करना चाहें, कर सकते हैं। उनका संग्रह सुरूचिपूर्ण होगा।

कला–इतिहास और 'कला के सिद्धांतों' का महत्व कम नहीं है। जगत में मनुष्य की कला–कृतियों का जो खजाना भरा पड़ा है, उससे परिचय करना और उसको जानना कला–बोध के विकास मे महत्वपूर्ण कदम है। इसमें विशेष

ध्यान जागतिक दृष्टि की ओर रहना चाहिये। भारतीय कला का इतिहास जान लेने से नहीं चलेगा और न केवल भारतीय कला की पहचान लेने से चलेगा, क्योंकि उससे संकुचित दृष्टि का निर्माण हो सकता है। मनुष्य ने अलग–अलग परिस्थितियों में अलग–अलग उपकरणों से अपने आंतरिक रूप–जगत को किस–किस तरह प्रकट करने की कोशिश की है, यह जानना जरूरी है। बुनियाद में बात एक ही है, मनुष्य हर जगह एक ही है। उसकी आंकाक्षाएं, उसकी आनंद–प्राप्ति के रास्ते ऊपरी ढंग से देखने में अनबत्ता अलग दीखते हैं, किंतु उनके अंदर एक ही दृष्टि है, सौंदर्य–निर्माण की। कहीं वह कुछ काल के लिए अधिक विकसित हुई, कहीं कभी कुछ पिछड़ गयी; पर वह अमुक जाति या अमुक देश होने के कारण नहीं। इस तरह की ऊपरी भेद बड़े समुद्र की अलग–अलग लहरों की तरह हैं, जिनके नीचे है महासमुद्र और यहां अगाध मनुष्य–हृदय!

कला–इतिहास के विषय का इसी दृष्टि से अध्ययन किया जाय। यह आवश्यक है कि जो हमारे अधिक निकट है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय है, वह पहले देखा–समझा जाय। पहले का अर्थ यह नहीं कि उसे देखें और दूसरा नहीं; पर चूंकि उसे समझना हमारे लिये सरल और स्वाभाविक है, उसे हम अच्छी तरह से समझें। अगर अपनी सांस्कृतिक बुनियाद अच्छी तरह से समझ ली जाय, तो दूसरी परंपराओं को समझना आसान हो जाता है।

प्राथमिक कक्षाओं में नाटक का उपयोग

सारा फिलिप्स

(अंग्रेजी से अनुवाद– भरत त्रिपाठी व मनीषा शर्मा)

(यह पुस्तक मूलतः इंगलैंड व अमरीका के स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षण को ध्यान में रखकर लिखी गई थी। इसका उद्देश्य नाटक विधाओं का भाषा शिक्षण में उपयोग। इसे हमने डी एड छात्र–छात्राओं के उपयोग के लिए न केवल हिन्दी में अनुवाद किया है, बल्कि इसे हिन्दी भाषा शिक्षण की दृष्टि से बदला है। जो लोग इसके अंग्रेजी मूल को पढ़ना चाहते हैं वे Sarah Philips, Drama with Children (Oxford) को देखें।

प्रस्तावना

यह किताब किसके लिए है?

बच्चों के लिए इस किताब में दी गयी लगभग सभी गतिविधियां पांच से बारह साल की आयु के बच्चों के साथ कक्षा में विभिन्न स्तरों पर की गयी हैं। निश्चित ही इनमें से अलग–अलग गतिविधियों की अलग–अलग बच्चों के लिये उपयुक्तता को दूसरे कारक भी प्रस्तावित करते हैं। उन्होंने पहले कितना नाटक किया हुआ है, वे शिक्षण के कैसे वातावरण के आदी हैं, उनका लड़का या लड़की होना, कक्षा का वातावरण तथा शारीरिक अभिव्यक्ति के प्रति सांस्कृतिक दृष्टिकोण। शिक्षक यह तय करने के लिये सबसे उपयुक्त व्यक्ति होते हैं कि उनकी कक्षा को ये कारक कैसे प्रस्तावित करते हैं। इसलिये, इस किताब में प्रत्येक गतिविधि के लिये जो उम्र और स्तर सुझाये गये हैं, वे केवल मार्गदर्शन के लिये हैं।

शिक्षकों के लिए यह किताब प्राथमिक स्तर के अनुभवहीन व अनुभवी, दोनों ही तरह के ऐसे भाषा शिक्षकों के लिये है जिन्हें नाटक को अपने शिक्षण के एक अतिरिक्त आयाम के रूप में शामिल करने या विकसित करने में रुचि है। यह किताब उन शिक्षकों के लिये प्रारंभिक स्तर की प्रायोगिक गतिविधियां सुझाती हैं, जिन्होंने इससे पहले अपनी कक्षाओं में नाटक का कभी इस्तेमाल नहीं किया है। इसके अलावा इसमें उन लोगों के लिये, जो नाट्यकला को अपनी शिक्षा के अभिन्न हिस्से के रूप में इस्तेमाल करने के प्रति ज्यादा आश्वस्त हो या जो सत्र के अंत में होने वाले कार्यक्रमों जैसे किसी प्रदर्शन की तैयारी करना चाहते हों, स्वांग और नये रूपक गढ़ने जैसी अन्य महत्वाकांक्षी गतिविधियां भी हैं। इस किताब का लक्ष्य कक्षा में नाट्यकला से व्यावहारिक परिचय कराना और एक ऐसा शुरुआती बिन्दु प्रदान करना है, जहां से शिक्षक खुद अपने तरीके विकसित कर सकें।

नाटकीकरण न कि नाटक

नाटक शब्द से मन में साल के अंत में घबराये हुए बच्चों द्वारा प्रदर्शित, बदहवास शिक्षकों द्वारा आयोजित और स्नेही माता–पिताओं द्वारा देखे जाने वाले किसी नाटक की तस्वीर बन सकती है। मैं इस छवि को बदलकर उसे इससे कहीं कम नाटकीय बनाना चाहती हूं। नाटक का मतलब सिर्फ उसका उत्पाद (प्रदर्शन) ही नहीं होता, बल्कि यह तो भाषा सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा है। इससे बच्चों को यह मौका मिलता है कि वे जिस साधारण व यांत्रिकीय भाषा का इस्तेमाल करते हैं उसे अपने–अपने व्यक्तित्व से जोड़कर अपना बना सकें। इससे उन बच्चों को, जो किसी बोली को बोलते समय संकोच महसूस करते हैं, एक दूसरा चरित्र मिल जाता है जिसके पीछे वे छिप सकते हैं। इसके लिये नाटकीकरण शायद नाटक से बेहतर

शब्द है। नाटकीकरण साल के अंत के परेशान कर देने वाले नाटक से कहीं सरल है। नाटकीकरण का मतलब है कि बच्चे किसी भी पाठ में सक्रिय रूप से भागीदारी करने लगें। बहुत ज्यादा कवायद करने या यांत्रिकीय ढंग से दोहराव करने के बजाय, ऐसा आत्मीयकरण भाषा को ज्यादा अर्थपूर्ण और यादगार बना देता है।

नाटक की गतिविधियों का उपयोग क्यों करें?

नाटक और नाटक की गतिविधियों के इस्तेमाल का भाषा सीखने में निश्चित ही लाभ मिलता है। इससे बच्चों को बोलने के लिए प्रोत्साहन मिलता है और उन्हें मौका मिलता है कि वे सीमित भाषा के साथ भी, अमौखिक संवाद–साधनों, जैसे कि शारीरिक गतिविधियों और चेहरे के हाव–भावों का इस्तेमाल करते हुए अपनी बात को संप्रेषित कर सकें। इसके अलावा ऐसे बहुत से अन्य कारक भी हैं जो नाटक को भाषा की कक्षा में एक बहुत सशक्त उपकरण बनाते हैं। जरा सोचने की कोशिश करें कि किसी पाठ्यपुस्तक में से किसी संवाद को सिर्फ जोर से पढ़ने की अपेक्षा उसी संवाद को अभिनय सहित व्यक्त करना कितने तरह से भिन्न होता है। आप पायेंगे कि यह सूची काफी लंबी होगी। यह इसलिये क्योंकि नाटक में कई स्तरों पर–जैसे कि शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, भाषा तथा सामाजिक मेलजोल के स्तरों पर बच्चों की भागीदारी शामिल रहती है। कुछ ऐसे क्षेत्र, जिनमें मुझे लगता है कि भाषा सीखने वालों तथा शिक्षकों के लिये नाटक बहुत उपयोगी हो सकता है, नीचे रेखांकित किये गये हैं।

उत्साहवर्धन

किसी पाठ का नाटकीकरण बहुत उत्साहवर्धक होता है और इसमें मज़ा भी आता है। इसके अलावा, एक ही गतिविधि एक ही समय पर विभिन्न स्तरों पर की जा सकती है जिसका मतलब है कि सभी बच्चे उसे सफलतापूर्वक कर सकते हैं। अंतिम उत्पाद अर्थात् प्रदर्शन, मन में स्पष्ट रहता है, इसलिये बच्चे आश्वस्त महसूस करते हैं और उनके पास पाने के लिये एक लक्ष्य होता है (भले ही यह उनके शिक्षक के लक्ष्यों से मेल न खाता हो)। बच्चों में जोश आ जाता है, अगर उन्हें यह पता हो कि उनके एक या दो समूहों से उनके द्वारा तैयार किये गये प्रहसन को मंचित करने के लिये कहा जायेगा, या कि उनका वीडियो बनाया जा रहा हो, या उन्हें किसी सार्वजनिक कार्यक्रम में शामिल किया जा रहा हो।

परिचित गतिविधियां

नाटकीकरण बहुत छोटी उम्र से बच्चों की जिंदगियों का हिस्सा होता है। बच्चे लगभग तीन या चार साल की उम्र से दृश्यों और कहानियों का अभिनय करने लगते हैं। वे खरीदारी करने या फिर डॉक्टर के पास जाने जैसी उन स्थितियों में वयस्कों का अभिनय करते हैं, जो उनकी जिंदगियों का हिस्सा होती हैं। रोजमर्रा के जीवन में ऐसी कई संभावित स्थितियां होती हैं। बच्चे स्वांग (रोल प्ले) करते हुए अलग–अलग भूमिकाएं निभाते हैं। वे उस स्थिति की भाषा और पटकथा का अभ्यास करते हैं और उसमें शामिल भावों को अनुभव करते हैं, यह जानते हुए कि वे जब चाहें तो वास्तविकता में लौट सकते हैं।

ऐसे स्वांग बच्चों को उनकी जिंदगी में आगे आने वाली वास्तविक परिस्थितियों के लिये तैयार करते हैं। यह असली चीज का पूर्वाभ्यास है। इस तरह के स्वांग उनकी सृजनात्मकता को बढ़ावा देते हैं और उनकी कल्पनाशीलता को विकसित करते हैं और साथ ही उस भाषा को इस्तेमाल करने का मौका देते हैं, जो उनकी रोजमर्रा की जरूरतों से बाहर की होती है। भाषा के शिक्षक, परिस्थितियों का अभिनय करने की इस स्वाभाविक अभिलाषा का उपयोग कर सकते हैं। आप उनसे पंचतंत्र का बंदर या खरगोश या बुद्धू शेर, अलादीन का जादुई कालीन, या एक डाकू होने के लिये कह सकते हैं, और फिर उस व्यक्तित्व या भूमिका को विकसित करने वाली हर तरह की भाषा का उपयोग कर सकते हैं।

आत्मविश्वास

किसी भूमिका को निभाने में बच्चे अपनी रोजमर्रा की पहचान से बाहर निकल सकते हैं और अपने संकोच से छुटकारा पा सकते हैं। यह उन बच्चों के लिये उपयोगी होता है, जो हिन्दी बोलने में संकोच करते हैं या सामूहिक गतिविधियों में शामिल होने से बचते हैं। यदि आप उन्हें कोई विशिष्ट भूमिका दे दें, तो उससे उन्हें उस चरित्र को अपनाने का और अपने शर्मीलेपन या झेंप को तोड़ने का प्रोत्साहन मिलता है। यह बात खासतौर पर तब और सही साबित होती है जब आप कठपुतलियों या मुखौटों का उपयोग करते हैं। शिक्षक भूमिकाओं का उपयोग उन बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिये कर सकते हैं, जो अन्यथा खुद को पीछे रखते हैं और उन बच्चों पर नियंत्रण रखने के लिये कर सकते हैं, जो कमजोर बच्चों को दबाते हैं।

सामूहिक क्रियात्मकता

बच्चे नाटकीकरण के दौरान अक्सर समूहों या जोड़ों में काम करते हैं। यह समूह कार्य काफी ढांचागत हो सकता है, जहां बच्चे किसी दिए गए प्रारूप की नकल करते हैं या इसका अर्थ बच्चों द्वारा खुद अपने काम की जिम्मेदारी लेना भी हो सकता है। बच्चों को एक समूह की तरह निर्णय लेना पड़ते हैं, एक–दूसरे की बातों को सुनना पड़ता है और एक–दूसरे के सुझावों को महत्व देना पड़ता है। अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिये उनका आपस में सहयोग करना जरूरी होता है, उन्हें अपने मतभेदों को दूर करने के तरीके ढूंढ़ना होते हैं और समूह के प्रत्येक सदस्य के मजबूत पहलुओं का उपयोग करना होता है।

सीखने की अलग शैलियां

नाटकीकरण सभी तरह के सीखने वालों को आकर्षित करता है। हम अलग–अलग तरीकों से सूचना को प्राप्त करते और व्यवस्थित करते हैं। प्रमुख रूप से देखकर, सुनकर और अपने भौतिक शरीरों का उपयोग करके हम ऐसा करते हैं। हममें से प्रत्येक में इनमें से कोई एक माध्यम ज्यादा प्रभावी होता है। यदि हम इस माध्यम द्वारा कोई जानकारी हासिल करते हैं, तो हमारे लिये उसे समझना और इस्तेमाल करना आसान हो जाता है। पर यदि वह जानकारी किसी कमजोर माध्यम के द्वारा हमारे सामने आये, तो हमें उन विचारों को समझना ज्यादा मुश्किल हो जाता है। जब बच्चे नाटकीकरण करते हैं तो वे इन सभी माध्यमों का उपयोग करते हैं और प्रत्येक बच्चा अपने माफिक माध्यम से प्रेरणा लेता है। इसका मतलब यह कि वे सभी उस गतिविधि में सक्रिय रूप से शामिल रहेंगे और उसकी भाषा उनके लिये सबसे उपयुक्त माध्यम के द्वारा उनके भीतर प्रवेश करेगी।

भाषा का आत्मीयकरण

नाटकीकरण बच्चों को यह मौका देता है कि वे उनके द्वारा पढ़े गये या सुने गये किसी पाठ में कोई भावना या व्यक्तित्व जोड़ सकें। कोई भी शब्द, वाक्य या लघु संवाद (दो से चार लाइनों का) लें, और बच्चों से उसे चरित्र में पैठकर कहने का अभ्यास करने को कहें। यह बहुत आश्चर्यजनक है कि कैसे तुम्हारा नाम क्या है? जैसे सरल वाक्य का मतलब भी उसको कहने के ढंग और उसके उपयोग के स्थान के अनुसार बदला जा सकता है। सोचिये कि इस सवाल को एक पुलिस वाला किसी चोर से कैसे पूछेगा और इसी सवाल को फादर क्रिसमस (सैंटा क्लॉस) किसी आशावान बच्चे से कैसे पूछेंगे। शब्दों का मतलब समझकर बच्चे उन्हें अपना बना लेते हैं। इससे भाषा भी याद रखने योग्य बन जाती है।

संदर्भ में भाषा

कक्षा में हम अक्सर बच्चों को पूरे वाक्यांशों या खंडों के बजाय भाषा के छोटे–छोटे टुकड़ों जैसे कि स्वतंत्र शब्दों से परिचित कराते हैं। बोलते समय बच्चों से आमतौर पर उनके द्वारा सीखी जा रही विभिन्न वाक्य–संरचनाओं को जोड़ने के लिये नहीं कहा जाता। नाटक किसी दिए गए संदर्भ में किसी अनजानी भाषा के अर्थ का अनुमान लगाने

के लिये बच्चों को प्रोत्साहित करने का एक ऐसा आदर्श तरीका है जिससे अक्सर अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इसी तरह बच्चे सफलतापूर्वक संवाद कर पाएं, इसके लिये जरूरी है कि वे कई तरह के भाषायी ढांचों और कारकों का इस्तेमाल करें।

बहु–विषयी सामग्री

नाटक को इस्तेमाल करते समय आपके लक्ष्य भाषायी से ज्यादा भी हो सकते हैं। आप अन्य विषयों से लिए गए टॉपिकों का भी इसमें इस्तेमाल कर सकते हैं। बच्चे ऐतिहासिक दृश्यों का अभिनय कर सकते हैं या फिर किसी मेंढक के जीवन चक्र का अभिनय कर सकते हैं। आप पाठ्यक्रम में आए हुए विचारों और मुद्दों जैसे लैंगिक भेदभाव, पर्यावरण के प्रति सम्मान और सड़कों पर सुरक्षा आदि पर भी काम कर सकते हैं। प्रहसनों और स्वांगों के द्वारा महत्वपूर्ण संदेशों का संप्रेषण किया जा सकता है और उनकी पड़ताल की जा सकती है। नयी भाषा की संस्कृति से परिचित कराने के लिये भी नाटक का इस्तेमाल कहानियों और रिवाजों के माध्यम से किया जा सकता है, साथ ही किसी संदर्भ के साथ इसका इस्तेमाल विभिन्न प्रकार के मानवीय व्यवहारों पर काम करने के लिये भी किया जा सकता है।

पाठ की गति

नाटक कक्षा की गति या मनोदशा में बदलाव ला सकता है। नाटकीकरण विद्यार्थी–केन्द्रित होता है, जिससे कि आप उसका इस्तेमाल अपने पाठ के ज्यादा शिक्षक–केन्द्रित भागों से अंतर स्थापित करने के लिये कर सकते हैं। यह सक्रिय गतिविधि है, इसलिये आप इसका उपयोग चुपचाप किये जाने वाले काम या वैयक्तिक कार्य के बाद कक्षा को अधिक जीवंत बनाने के लिये कर सकते हैं।

कक्षा में नाटकीकरण का इस्तेमाल करने के लिये व्यावहारिक सुझाव

सही गतिविधि चुनें जब आप किसी नाटक सम्बंधी गतिविधि की योजना बनाते हैं तो आपको अपना लक्ष्य पता होना चाहिये। कुछ गतिविधियां सटीकता और प्रवाह पैदा करने वाले कामों के लिये हो सकती हैं और कुछ भाषायी कौशल का अभ्यास करने के लिये। आपका लक्ष्य पिछले पाठों की भाषा को दोहराना या उसका अभ्यास करना हो सकता है या फिर आपका लक्ष्य पाठ की गति को बदलना हो सकता है। किताब के शुरू में दिये गये विषय–सूची वाले पृष्ठ के फोकस कॉलम को देखें।

बच्चों की उम्र आपके द्वारा बनाई जाने वाली गतिविधि की योजना को प्रसवित करती है। छोटे बच्चों को समूहों में काम करने में ज्यादा दिक्कत होती है। अतः पूरी कक्षा को सम्मिलित करके की जाने वाली गतिविधियां या काफी मार्गदर्शित गतिविधियां उनके लिये अच्छी होती हैं। बड़े बच्चे छोटे समूहों में बेहतर काम कर सकते हैं हालांकि यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे किस शिक्षण शैली के आदी हैं। वे कई जगह खुद पहल भी कर सकते हैं। चरित्रों और परिस्थितियों के बारे में अपने विचार रख सकते हैं और यदि वे कुछ समय से पढ़ रहे हों, तो शायद उन्हें सिर्फ भाषा को लेकर शिक्षक की मदद लगे। बच्चे जितना ज्यादा नाटकीकरण करेंगे और अपने किये हुए काम का वे जितना विश्लेषण करेंगे, उतना ही वे बेहतर होते जाएंगे।

छोटे से शुरुआत करें सभी बच्चे अभिनय में अच्छे नहीं होते खासकर तब जब नाटक उनके पहले भाषा पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं होता। छोटे –छोटे चरणों के साथ अपनी कक्षा में नाटक से बच्चों का परिचय कराएं। सरल व मार्गदर्शित ।

गतिविधियों से शुरुआत करें जैसे 1.1 किसी दानव की नकल करो और फिर जैसे–जैसे बच्चों का आत्मविश्वास बढ़े तो कम नियंत्रित गतिविधियों जैसे– नाटक की ओर बढ़ें। आपको आश्चर्य हो सकता है कि आपको उन्हें साधारण सी चीजें जैसे–अपने हाथों को फैलाना, छोटे और बड़े कदम लेना, और मनोभावों को प्रदर्शित

करने के लिये अपने चेहरे और पूरे शरीर का इस्तेमाल करना सिखाना पड़ता है। बच्चों को नाटकीकरण में ले जाने के लिये संपूर्ण शारीरिक प्रतिक्रिया वाली गतिविधियाँ एक शानदार तरीका हैं। बच्चे भाषा के प्रति अपने शरीरों से प्रतिक्रिया करते हैं, जो स्वांग और अभिनय की तरफ पहला कदम है। बच्चों को अक्सर यह आभास नहीं होता कि वे चीजों को अलग–अलग ढंग से कह सकते हैं। उनसे शब्दों या वाक्यों को जोर से, धीमे से, क्रोधी स्वर में या दुखी स्वर में बोलने के लिये कहना भी उनके लिये अपनी आवाजों की शक्ति को पहचानने का अच्छा तरीका हो सकता है। बच्चों को यह महसूस होना जरूरी है कि आपके भीतर नाटकीकरण के प्रति जोश है और आप अपने द्वारा प्रस्तावित गतिविधियों को करने में मज़ा लेते हैं। आप उनके लिये एक प्रारूप या आदर्श की तरह काम करते हैं और उन्हें कक्षा में सक्रिय रहने के लिए प्रोत्साहन देते हैं।

कक्षा को व्यवस्थित करें बच्चे अधिकांश गतिविधियां खड़े रहकर करते हैं और आमतौर पर कक्षा की सामने वाली जगह पर्याप्त होती है। यदि बच्चे गोले में खड़े हों या समूहों में काम कर रहे हों तो आपको ज्यादा जगह की जरूरत होगी। टेबल और कुर्सियों को कक्षा के एक कोने में सरका दें या फिर बच्चों को बाहर ले जाएं।

प्रतिक्रिया (फीडबैक) दें आप किन्हीं व्यावसायिक अभिनेताओं या अभिनेत्रियों को प्रशिक्षित नहीं कर रहे हैं बल्कि बच्चों को हिन्दी का अभ्यस्त होने का और उसका इस्तेमाल करने का एक रोचक तरीका सिखा रहे हैं। बच्चों ने जो कुछ भी किया हो, न केवल अंतिम उत्पाद और भाषा बल्कि जिस प्रक्रिया से वे गुजरे, जिस तरह उन्होंने एक दूसरे का सहयोग किया और कैसे उन्होंने अपने निर्णय लिये, आप इस सबका विश्लेषण करते हुए अपनी प्रतिक्रिया दें। कुछ अच्छी बात देखकर उस पर टिप्पणी करें। बच्चों के काम में ऐसे क्षेत्र भी रहेंगे जिनमें सुधार की गुंजाइश होगी और बच्चों को बताए जाने वाले अपने विश्लेषण में आपको यही बात उजागर करना होगी। जब बच्चे गतिविधि में संलग्न हों तो उन्हें ध्यान से देखें और सुनें, दखल न देने की कोशिश करें और जो आप देखें उसके नोट्स बनाते जाएं। आपका मुख्य लक्ष्य है इस सारी प्रक्रिया पर बच्चे प्रदर्शन को इस पाठ के सबसे अहम हिस्से के रूप में देखेंगे। आपको उनके प्रदर्शनों को महत्व देना चाहिये। जब वे अपना काम खत्म कर लें, तो आप कुछ समूहों से अपना काम दिखाने को कह सकते हैं और फिर उन्हें अपनी प्रतिक्रिया दे सकते हैं। ऐसा करने के कई तरीके हो सकते हैं। आप उनके करने के लिये एक प्रतिक्रिया शीट तैयार कर सकते हैं और उसका उपयोग कर सकते हैं। यदि रचनात्मक प्रतिक्रिया नाटकीकरण की गतिविधियों का नियमित हिस्सा बन जाए, तो बच्चे धीरे–धीरे नाटकीकरण की अपनी क्षमताओं और अपनी भाषा में सुधार कर लेंगे।

इस किताब का इस्तेमाल कैसे करें?

इस किताब में आप नाटक की ऐसी गतिविधियां पाएंगे जिन्हें आप कक्षा में बच्चों की भाषा उपयोग को सक्रिय करने और मजे के लिये उपयोग कर सकते हैं। इस किताब को छः अध्यायों में बांटा गया है। पहले अध्याय में मार्गदर्शन सहित ऐसी गतिविधियां दी गयी हैं, जो पाठ के समय में बच्चों को नाटक से परिचित कराने के महत्वपूर्ण शुरुआती चरण हैं और ये उन बच्चों के साथ उपयोगी होंगी जिन्होंने हिन्दी सीखना शुरू ही किया है। अध्याय 2 में धुनों, तुकबन्दियों और गानों को इस्तेमाल करने के सुझाव दिये गये हैं। अध्याय 3 और 4 कठपुतलिया बनाने व उनका उपयोग करने के बारे में हैं और अध्याय 5 सरल से नाटक आयोजित करने के बारे में है। आखिरी अध्याय में किताब स्वांग जैसी चीजों की तरफ बढ़ जाती है जहां बच्चों को अपने पूरे भाषायी संसाधन का उपयोग रचनात्मक ढंग से करना होता है। सभी भाषायी स्तरों पर बच्चों के पास यह मौका रहता है कि वे इन गतिविधियों में अपना कुछ जोड़ने के लिये अपने शरीरों, आवाजों, और मनोभावों का इस्तेमाल कर सकें और उस भाषा को अपना बना सकें।

प्रत्येक गतिविधि को कैसे नियोजित किया गया है

स्तर

1. प्रारंभिक रूप उन बच्चों से लेकर जिन्हें हिन्दी का थोड़ा –सा या बिलकुल ज्ञान नहीं है, उन बच्चों तक के लिए जो रंगों के हिन्दी नाम पहचान लेते हों या बारह तक की संख्या जानते हों और कुछ बुनियादी शब्दावली जैसे–परिवार, पशुओं और कुछ खाने के पदार्थों के नाम जानते हों या मैं हूं, तुम हो, यहां है, वहां है; का प्रयोग करना जानते हों या और कक्षा में इस्तेमाल होने वाले आदेशात्मक वाक्यांशों जैसे बैठो, खड़े हो जाओ और अपनी किताबें खोलो; को पहचानते हों। उनके द्वारा इस भाषा का सक्रिय इस्तेमाल बहुत सीमित रहेगा।

2. प्राथमिक रूप से ये बच्चे पहले स्तर की भाषा का इस्तेमाल ज्यादा सक्रिय रूप से कर सकते हैं और सरल वाक्य व प्रश्न बना पाते हैं। उनके पास ज्यादा बड़ी शब्दावली होती है। उदाहरण के लिये, कपड़े, दुकानें, शरीर के अंग, रोजमर्रा में इस्तेमाल होने वाली क्रियाएं और समय बता पाना (यदि वे अपनी भाषा में ऐसा करना जानते हों)।

3. पूर्व–माध्यमिक रूप से ये बच्चे वाक्यों के ढांचों को पहचानने और अपनी खुद की भाषा रचने में ज्यादा सक्षम होंगे। वे सामान्य भूतकाल, तुलनावाची शब्द तथा आभार, निवेदन या सुझाव व्यक्त करने जैसे भाषायी ढांचों को सीखने के लिये तैयार होते हैं।

यह बहुत महत्वपूर्ण है कि इन स्तरों को उम्र के वर्षों से जोड़कर न देखा जाये क्योंकि बच्चे के परिपक्व हो जाने पर उसकी क्षमता में बहुत फर्क आ जाता है। थोड़ा बड़ा बच्चा एक ही साल में दूसरे स्तर पर पहुंच सकता है, जबकि छोटे बच्चों को धीरे–धीरे आगे बढ़ना होता है।

आयु वर्ग

अक्षर अ, ब और स बच्चों की उम्र को इंगित करते हैं।

अ. 6 से 8 साल तक के

ब. 8 से 1 0 साल तक के

स. 10 से 12 साल तक के

यह सिर्फ एक मोटा–मोटा मार्गदर्शन है। आप स्वयं अपने हिसाब से निर्णय करें।

समय

गतिविधि को पूरा करने में कितना समय लगेगा यह बताने के लिए एक मोटा–मोटा मार्गदर्शन। कुछ बातों का समयावधि पर खासा असर पड़ेगा जैसे बच्चों की संख्या के हिसाब से कक्षा का आकार, बच्चों की उम्र, बच्चे समूह में कार्य करने के आदी हैं कि नहीं इत्यादि।

उद्देश्य

इन गतिविधियों के उद्देश्यों को दो भागों में बांटा जाता है। भाषायी उद्देश्य और अन्य उद्देश्य। भाषायी उद्देश्यों में भाषा और कौशलों के विकास को लक्ष्य मानकर चला जाता है जबकि अन्य उद्देश्यों में बच्चों के बौद्धिक और सामाजिक विकास को ध्यान में रखा जाता है।

वर्णनः गतिविधि का संक्षिप्त वर्णन ताकि आपको समग्र तौर पर उसका एक अनुमान हो जाये।

सामग्रीः गतिविधि के दौरान इस्तेमाल होने वाली चीजों की सूची।

तैयारीः एक संक्षिप्त रूपरेखा कि आपको पाठ के पहले क्या–क्या करना होगा।?

कक्षा मेः गतिविधि करने का चरण दर चरण मार्गदर्शन।

बाद की गतिविधिः आगे की गतिविधियों के लिये सुझाव व विचार ताकि जो सीखा गया है उसे और सुदृढ़ किया जा सके।

बदलावः उन तरीकों के उदाहरण जिनके द्वारा आप उस गतिविधि को अपने बच्चों के माफिक ढाल सकते हैं।

टिप्पणियां गतिविधि को सुगमता से करने के लिये संकेत और सुझाव।

1 शुरुआत

इस अध्याय की गतिविधियां आपको मौका देती हैं कि आप अपने रोजमर्रा के पाठों में नाटकीकरण का तत्व डाल सकें और लंबी गतिविधियों के लिये जरूरी कौशलों पर काम कर सकें। ये गतिविधियां छोटी हैं, इन्हें करने में मजा आता है, आयोजित करना आसान है और अन्य भाषायी विषयवस्तु के साथ इस्तेमाल करने के लिये इन्हें उसके अनुरूप ढाला जा सकता है। कई गतिविधियां नकल उतारने पर ध्यान केन्द्रित करती हैं ताकि बच्चे अर्थ को व्यक्त करने के लिये अपने शरीरों का इस्तेमाल कर सकें। ध्यान केन्द्रित करने में यह बदलाव भाषा सीखने के लिये बहुत सशक्त तरीका हो सकता है। बच्चे एक अधिक अवचेतन तल पर भाषा को ग्रहण करते हैं क्योंकि वे इस बारे में नहीं सोच रहे होते कि वे क्या कह रहे हैं बल्कि उनका ध्यान इस पर होता है कि अर्थ को कैसे स्पष्ट किया जाये।

सभी गतिविधियों में बच्चे जोड़ों, समूहों या फिर एक पूरी कक्षा की तरह करते हैं और स्वांग या लघु–स्केचों की तैयारी करते हैं। यदि आपके बच्चे जोड़ों में काम करने और अपने काम की जिम्मेदारी लेने के आदी नहीं हैं, तो आपको इस गतिविधि का इस्तेमाल चरण दर चरण करना होगा उन्हें उन्मुक्त कार्य जैसे 1 से 9 कथा चित्र पर जाने देने से पहले उनसे शिक्षक–नियंत्रित गतिविधियां–जैसे 1–1 दानव की नकल करो; करवाना होंगी। बच्चे एक साथ मिलकर कैसे काम करते हैं इस पर अपनी प्रतिक्रिया व टिप्पणी देना आवश्यक होता है ताकि उन्हें समूहों में काम करना सीखने में मदद मिले।

यदि आप इस तरह की गतिविधियों का खूब प्रयोग करेंगे तो बच्चे नाटकीकरण की प्रक्रिया के साथ सहज महसूस करने लगेंगे। यदि आप ज्यादा महत्वाकांक्षी होना चाहते हैं और किसी लघु नाटक पर काम करना चाहते हैं, तो ये शुरुआती गतिविधियां पाठ को पढ़ने और उसका अभिनय करने के बीच एक अत्यावश्यक कड़ी का काम करती हैं।

1 राक्षस की नकल करो

स्तर . 1.2

आयु समूह . सभी

समय . **15** मिनट

उद्देश्य . भाषा – शारीरिक अंगों की शब्दावली और ब्यौरे के लिये सुनना।

अन्य– जोड़ों में काम करना या शारीरिक संयोजन पर काम करना।

वर्णन . बच्चे जोडों या समूहों में काम करते हैं। शिक्षिका एक दानव का वर्णन करती है जिसे बच्चे मिलकर अपने शरीरों के साथ बनाते हैं।

तैयारी . दानवों के विवरणों को तैयार करें। उदाहरण के लिये *दो सिरों, तीन बाहों, एक पैर, और एक* पूंछ वाला दानव बनाएं।

कक्षा में .

1. शरीर के उन विभिन्न अंगों की ओर इशारा करें जिनका आप उपयोग करने जा रहे हों और यह देखने के लिये कि बच्चे उनसे परिचित हैं कि नहीं उनसे उनके नामों को बुलवायें।

2. दो इच्छुक बच्चों से कक्षा के आगे आकर खड़े होने को कहें। उन्हें समझाएं कि उन्हें आपके निर्देशानुसार राक्षस बनाने के लिये इकट्ठे मिलकर काम करना होगा।

3. राक्षस का विवरण बताएं और इन बच्चों की मदद करें ताकि वे अपने हाथों, पैरों और शरीर के दूसरे अंगों से उसे बना पाएं। कक्षा से टिप्पणियां मांगें और सकारात्मक प्रतिक्रिया दें जिससे दूसरे बच्चों को मदद मिलेगी जब दानव बनाने की उनकी बारी आएगी।

4. पूरी कक्षा के साथ यह प्रक्रिया दोहराएं।

5. उन जोड़ों पर ध्यान दें जिन्होंने रोचक दानव बनाए हैं। उनसे अपने दानवों को पूरी कक्षा को दिखाने को कहें।

बाद की गतिविधि–बच्चों से राक्षसों के चित्र बनाने को कहें और एक चित्र प्रदर्शनी या एक राक्षस सूची बनाएं।

बदलाव–बच्चे तीन या चार के समूहों में काम करते हुए दानव बनाते हैं। हर समूह में एक बच्चा निर्देश देता है जिसका दूसरे बच्चे अनुसरण करते हैं। शिक्षक पूरी कक्षा में घूमते हैं, किसी एक दानव का वर्णन करते हैं और फिर दूसरे बच्चे उसकी पहचान करते हैं।

1.2 मैं कौन हूं

स्तर–1

आयु समूह– ए व बी

समय 15 मिनट

लक्ष्य भाषा– पाठ्यपुस्तक के वाक्यांशों को दोहराना।

अन्य– बच्चों को जोड़ों में काम करने के लिये प्रोत्साहित करना, संयोजन पर काम करना और बच्चों को प्रेरित करना कि वे पाठ्यपुस्तक में से भाषा को दोहराएं।

वर्णन–अपने किताब के किसी पन्ने पर दिये गये चरित्रों को निभाने के लिये बच्चे जोड़ों में काम करते हैं। प्रत्येक जोड़ा बाकी कक्षा को अपना स्वांग दिखलाता है और फिर बाकी बच्चे उन चरित्रों के बारे में अनुमान लगाते हैं और यह याद करने की कोशिश करते हैं कि वे उस समय क्या कह रहे थे।

सामग्री–आपकी पाठ्यपुस्तक।

तैयारी–पाठ्यपुस्तक के किसी यादगार दृश्य पर एक सरल स्वांग की तैयारी करें।

कक्षा में 1 बच्चों से उनकी किताब के चरित्रों के नाम पूछें जैसे पशुओं के इत्यादि।

2 बच्चों को अपना स्वांग दिखाएं। उनसे पूछें कि क्या वे पहचाने कि आप कौन हैं। क्या वे यह याद कर पाते हैं कि वह चरित्र उस समय क्या कह रहा था।

3 बच्चों को बता दें कि उन्हें किताब में से एक स्वांग तैयार करने के लिये जोड़ों में काम करना होगा। उन्हें जोडों में या तिकड़ियों में बांट दें और उन्हें समय दें ताकि वे किताब को फिर देख जाएं, उसमें से एक दृश्य चुनें, और फिर उसे तैयार करें। यह जरूरी नहीं कि दश्य स्थिर हो, वे उसमें गतिविधि कर सकते हैं।

4 जब अधिकांश जोड़ें तैयार हों, तो तैयारी को रोक दें और कुछ समूहों से अपना ॰श्य दिखाने को कहें। दूसरे बच्चों को यह अनुमान लगाना होगा कि वे कौन हैं और उनके चरित्र क्या कह रहे हैं।

बाद की गतिविधि आप या कोई बच्चा इन दृश्यों की तस्वीर ले सकते हैं। बच्चे इन तस्वीरों में कथनों के गोले बना सकते हैं और फिर उन्हें दीवार पर प्रदर्शित कर सकते हैं।

1.3 मूर्तियां

स्तर 1

आयु समूह–ए एवं बी

समय 15 मिनट

उद्देश्य भा**षा –** शब्दावली को दोहराना।

अन्य– बच्चों को जोड़ो में मिलकर काम करने के लिये प्रोत्साहित करना, कल्पनाशक्ति और सृजनशीलता को प्रेरित करना और शारीरिक संयोजन पर काम करना।

वर्णन–बच्चे जोड़ों में काम करते हुए किसी शब्द–परिवार में से किसी एक ऐसे शब्द का स्वांग करेंगे जिस पर उन्होंने काम किया हो। उदाहरण के लिये *पेंसिल, पेन और पेंसिल बॉक्स।* वे इसे बाकी कक्षा को दिखाते हैं जिन्हें अनुमान लगाना होता है कि वह क्या है।

कक्षा में 1. बच्चों को शब्द–परिवारों के विचार से परिचित कराएं। आप बच्चों से पूछ सकते हैं कि वे उन विषयों के बारे में बताएं जिन पर वे हाल में काम कर रहे थे और उनसे वे शब्द बताने को कहें जिन्हें वे उन विषयों से जोड़ कर देखते हैं। उदाहरण के लिये– *कार, ट्रेन,* और*एबस* इसके अलावा, आप प्रत्येक विषय से कुछ शब्द लिख सकते हैं और फिर बच्चों से उन शब्दों को विभिन्न शाब्दिक परिवारों में रखने के लिये कहें और उनसे उनके वर्गीकरण का कारण पूछें।

2. बोर्ड पर लिखे इन शब्द परिवारों में से किसी एक परिवार में से एक शब्द चुनें। बच्चों से कहें कि किसी एक शब्द को प्रदर्शित करने वाली मूर्ति बनने जा रहे हैं और उन्हें वह परिवार बता दें जहां से आपने वह शब्द लिया है। उस शब्द का स्वांग करें और बच्चों से अनुमान लगवाएं कि वह शब्द कौन सा है।

3. बच्चों को जोड़ों में बांट दें। उनसे बोर्ड पर लिखे शब्द परिवारों में से किसी एक परिवार में से एक शब्द चुनने को कहें।

4. बच्चों को अपनी मूर्ति तैयार करने के लिये कुछ मिनट दें। कक्षा में चक्कर लगाते रहें और बच्चों की मदद करें व उनको प्रोत्साहित करें।

5. अब तैयारी को रोक दें। जोड़ों से अपनी मूर्ति को कक्षा के समक्ष दिखाने को कहें और फिर वे लोग अनुमान लगाएं कि वह क्या है। यदि कोई बच्चे अपनी मूर्ति दिखाने के लिए बिलकुल अनिच्छुक हों, तो उनके साथ जबरदस्ती न करें।

बदलाव—बच्चे अपनी मूर्तियाँ बनाने के लिये तिकड़ियों या चौकड़ियों में भी काम कर सकते हैं।

1.6 सुनो और स्वांग करो

स्तर **सभी**

आयु समूह **सभी**

समय **15.30 मिनट, कहानी पर निर्भर करेगा**

उद्देश्य **भाषा–** किसी कहानी को सुनना और खास शब्दों और वाक्यांशों पर ध्यान देना।

अन्य– किसी कहानी का चित्रण करने के लिए शारीरिक गतिविधियों का उपयोग करना।

वर्णन–बच्चे कोई कहानी सुनते हैं, और विभिन्न शब्दों को सुनने पर अलग–अलग शारीरिक गतिविधि करते हैं।

सामग्री–एक कहानी, उदाहरण के लिये, विशाल हाथी की कहानी।

तैयारी– 1. एक कहानी चुनें और उसकी एक रूपरेखा लिख लें।

2. इसे कहने का अभ्यास करें, संभव हो तो किसी साथी को सुनाएं।

3. कहानी से कुछ अहम शब्द चुनें और इन शब्दों का चित्रण करने वाली शारीरिक भंगिमाओं के बारे में सोचें।

4. ये शारीरिक भंगिमाएं करते हुए कहानी कहने का अभ्यास करें।

कक्षा में

कहानी के पहले

1. बच्चों को बता दें कि आप उन्हें एक कहानी सुनाने वाले हैं, पर उन्हें पहले कुछ भंगिमाएं सीखना पड़ेंगी।

2. बच्चों से खड़े होने को कहें, संभव हो तो एक गोले में खड़ा करवाएं। गोले में उनके साथ खड़े हो जाएं उन्हें दो या तीन शब्द और भंगिमाएं सिखाते हुए शुरुआत करें। फिर बदले हुए क्रम में इन्हीं शब्दों को दोहराएं और बच्चों से संबद्ध भंगिमाएं करवाएं (बच्चों को शब्दों को कहने की जरूरत नहीं है)।

3. कुछ और शब्द और भंगिमाएं सिखाएं। बच्चों से इन नये शब्दों से जुड़ी भंगिमाएं और पिछले शब्दों की भंगिमाएं एक साथ करवाएं। एक–एक करके कुछ और शब्द और भंगिमाएं सिखाते जाएं जब तक कि आप उन सबका प्रदर्शन और अभ्यास न कर लें।

उदाहरण–

स्वांग के लिये शब्द	**भंगिमाएं**
विशाल–	*अपने सिर के ऊपर से शुरू करते हुए अपने हाथों से एक विशाल गोला बनाएं*
हाथी–	*हाथी की सूंड के माफिक अपनी नाक के सामने एक हाथ हिलाएं*

ऊब— *हाथ पर सिर टिकाकर बैठ जाएं और चेहरे पर बोरियत का भाव हो।*

नया विचार— *चेहरे पर अचानक आये खुशी के भाव के साथ अपने सिर की ओर इशारा करें।*

चलना— *उस स्थान पर कुछ कदम चलें।*

शहर— *दोनों हाथ सिर के ऊपर करें जो गगनचुंबी इमारत का इशारा होंगे।*

किसी से मिलना— *अपने बगल में खड़े किसी व्यक्ति की ओर मुड़ें और हाथ मिलाएं।*

जादू— *अपने हाथ उठाएं और उन्हें जादुई धूल बिखेरने की तरह हवा में लहराएं*

बंदर— *एक हाथ से अपना सिर खुजलाएं और एक हाथ से दूसरे हाथ के नीचे वाली कांख को खुजलाएं*

क्या माजरा है? *अपने हाथ खोल दें और प्रश्न पूछने की मुद्रा में अपने कंधे उचकाएं*

ठीक है (सहमत होना) *आपके देश में सहमत होने के लिये जो भी प्रचलित शारीरिक मुद्रा हो*

पागल— *पागलपने के लिये आपके देश में जो भी प्रचलित शारीरिक मुद्रा हो*

मगरमच्छ— *अपने फैली हुई बाहों से खटाक से बंद होने वाले मगरमच्छ के जबड़े बनाएं*

थकान— *अपने शरीर को झुका लें*

सोना— *अपने सिर को अपने दोनों हाथों में रख दें*

कहानी की रूपरेखा

विशाल हाथी

यह कहानी है विशाल हाथी, जादुई बंदर और पागल मगरमच्छ की। एक दिन विशाल हाथी ऊबा हुआ था, बहुत ज्यादा ऊबा हुआ था। फिर उसे एक विचार आया। मैं शहर जाऊंगा। वह बोला। तो उसने चलना शुरू किया और वह चलता गया, चलता गया, चलता ही गया। रास्ते में वह जादुई बंदर से मिला।

नमस्ते, जादुई बंदर, वह बोला।

नमस्ते जादुई बंदर ने कहा।

क्या माजरा है? विशाल हाथी ने पूछा।

मैं ऊब रहा हूं। जादुई बंदर बोला बहुत ज्यादा ऊब रहा हूं। मेरे पास एक तरकीब है, विशाल हाथी बोला। तुम मेरे साथ शहर क्यों नहीं चलते?

ठीक है। जादुई बंदर बोला।

तो इस तरह उन्होंने चलना शुरू किया और वे चलते गये, चलते गये, चलते ही गये। रास्ते में वे पागल मगरमच्छ से मिले।

नमस्ते, पागल मगरमच्छ उन्होंने कहा।

नमस्ते, पागल मगरमच्छ बोला।

क्या माजरा है? विशाल हाथी ने पूछा।

मैं ऊब रहा हूं पागल मगरमच्छ बोला। बहुत ज्यादा ऊब रहा हूं।

मेरे पास एक तरकीब है। विशाल हाथी बोला। तुम हम लोगों के साथ शहर क्यों नहीं चलते।

ठीक है। पागल मगरमच्छ ने कहा।

तो उन्होंने चलना शुरू किया और वे चलते गये, चलते गये, चलते गये, चलते गये, चलते गये, चलते ही गये, चलते ही गये, चलते ही गये।

आह, मैं तो थक गया, विशाल हाथी बोला।

आह, मैं भी थक गया, जादुई बंदर बोला।

आह, मैं भी थक गया, पागल मगरमच्छ बोला। और वे सब सो गये।

कहानी कहना

4. बच्चों से खड़े होने को कहें और यह सुनिश्चित कर लें कि वे सभी आपको देख पा रहे हों। फिर से यदि संभव हो, तो गोला बनाना बेहतरीन विकल्प है। यदि आप उन्हें पिछले पाठ में भंगिमाएं सिखा चुके हैं, तो उन्हें सामने लाएं। बच्चों से कहें कि वे कहानी को सुनें और हर बार जब उन शब्दों में से कोई शब्द आए जिनका आप अभ्यास करते रहे थे, तो उसके अनुरूप उपयुक्त भंगिमा बनाएं।

5. कहानी सुनाएं। सुनाते समय भंगिमाएं भी बनाते जाएं। बच्चों को प्रोत्साहित करें कि वे भी आपके साथ भंगिमाए बनाएं।

6. इसी कक्षा में या अगली किसी कक्षा में कहानी फिर से सुनाएं। बार–बार सुनाए जाने पर आप महसूस करने लग सकते हैं कि अब आपको भंगिमाए बनाने की जरूरत नहीं है।

आभार

मैंने यह कहानी अपने एक साथी गाय नॉर्मन से सीखी थी, जिसने इसे कुछ दस साल पहले एपीआई कांफ्रेस में सीखा था। मैं इस सर्वाधिक सफल कहानी के अज्ञात लेखक के प्रति आभार व्यक्त करना चाहूंगी।

बाद की गतिविधि

. भंगिमाओं के साथ कहानी कहने के बाद आप विभिन्न गतिविधियां कर सकते हैं।

. कहानी पर आधारित एक कार्टून पट्टी या किताब बनायें।

. भंगिमाओं वाले शब्दों के लिये लिखित कहानी में जगह छोड़ें।

. बच्चों से कहानी की तस्वीरों को क्रम में लगाने को कहें और प्रत्येक के लिये एक वाक्य लिखें।

. उनसे कहानी में कुछ परिवर्तन करने के संबन्ध में सोचने को कहें।

. कहानी को कुछ दर्शकों के सामने प्रस्तुत करें। आप मुखौटों, हैटों इत्यादि का प्रयोग कर सकते हैं।

विविधताएं–

. यदि शब्द जाने–पहचाने हैं, तो बच्चों को भंगिमाएं दिखलाएं और उनसे शब्दों के बारे में अनुमान लगाने को कहें।

. तस्वीरों के द्वारा शब्दों को प्रस्तुत करें और फिर बच्चों से कहें कि वे स्वयं शब्दों के अनुसार भंगिमाएं तैयार करें।

. भंगिमाओं के साथ शब्दों का प्रयोग करने के बाद बच्चों से कहानी के बारे में अनुमान लगाने को कहें।

. यदि कहानी तीन या चार चरित्रों वाली है, तो बच्चों को प्रत्येक चरित्र के लिये एक बच्चे के हिसाब से छोटे समूहों में बांट दें और जैसा–जैसा आप बताते जाएं वैसी–वैसी भंगिमाएं करने के लिये उनसे कहें।

टिप्पणियां-

आप एक या एक से ज्यादा पाठों के लिये कहानी कहने से पहले कहानी के पहले की गतिविधि करने के इच्छुक हो सकते हैं। एक बुनियादी ढांचे को दोहराकर आगे बढने वाले इस प्रकार की कुछ वास्तविक बाल कहानियां भी हैं जिनका इस तरह की गतिविधि के लिये उपयोग किया जा सकता है।

1.8 हम कौन हैं?

स्तर –2 ए 3

आयु समूह–बी व सी

समय– या तो अलग–अलग पाठों में 15–15 मिनट के तीन कालखंड या 15–30 मिनट तैयारी के लिए और 15 मिनट प्रदर्शन के लिए।

उद्देश्य–भाषा– पिछले पाठों की भाषा को दोहराना और उसका पुनर्अभ्यास करना।

अन्य–चरित्र का चित्रण करने के लिये उपयुक्त भंगिमाओं, शारीरिक भाषा और स्वर के बारे में सोचना और प्रयोग करना तथा एक लघु नाटिका में मंचन करने (प्रवेश, प्रस्थान और शारीरिक गतिविधियों) के बारे में सोचना।

वर्णन– बच्चे एक नाटिका की तैयारी करने के लिये दो या तीन के समूहों में काम करते हैं जहां चरित्रों के एक समूह के बीच कुछ बातचीत होती है। जैसे–हम मान लेते हैं, कि एक बूढ़े व्यक्ति और जल्दबाजी कर रहे व्यक्ति के बीच बातचीत। कक्षा नाटिका को देखती है और फिर चरित्रों के बारे में अनुमान लगाती है।

सामग्री–कार्ड, जिन पर चरित्र लिखे हों, जैसा कि बॉक्स में दिखाया गया है (ये बच्चों की मातृभाषा में भी लिखे जा सकते हैं) या कमरे में काफी जगह होना चाहिये।

तैयारी 1. एक सरल संवाद चुनें जिस पर आप बच्चों से काम करवाना चाहते हों। तय करें कि बातचीत कहां होती है, उदाहरण के लिये सड़क पर या किसी होटल में। यदि आपके बच्चे वाकपटु हैं, तो आप उन्हें सिर्फ परिस्थिति समझाकर बातचीत का जिम्मा उन्हीं पर छोड़ सकते हैं। बातचीत और परिस्थिति के उदाहरण नीचे देखिए।

उदाहरण–सड़क पर होने वाली एक बातचीत

अ क्षमा कीजिये! पार्क कहां है?

ब वह उधर है।

अ कहां, मैं नहीं देख पा रहा हूं।

ब उधर देखिये जहां मैं इशारा कर रहा हूं। वहां, नदी के पास।

ऐसी स्थिति जहां बच्चे अपने मन से सोचकर बातचीत करते हैं

शनिवार की दोपहर है। एक व्यक्ति टीवी देखना चाहता है। दूसरा बाहर जाकर फुटबॉल खेलना चाहता है और तीसरा व्यक्ति थोड़ी शांति और मौन चाहता है।

2. ऐसे कार्ड तैयार करें जिन पर चरित्र लिखे हों (चरित्रों के लिये सुझाव देखें) हर बच्चे के लिये आपको एक कार्ड चाहिये पर चरित्रों का दोहराव किया जा सकता है 24 बच्चों की कक्षा के लिये आठ चरित्र पर्याप्त हैं।

उदाहरण—चरित्रों के लिए सुझाव

एक बहरा व्यक्ति

जल्दबाजी करता एक व्यक्ति

टूटे हुए हाथ वाला एक व्यक्ति

टूटे हुए पैर वाला एक व्यक्ति

एक व्यक्ति जिसे बहुत तेज जुकाम हुआ है

एक बूढा व्यक्ति

एक व्यक्ति जिसने बहुत सा सामान खरीदा हुआ हो

रोलर स्केट्स पर चलता एक बच्चा

एक बहुत थका हुआ व्यक्ति

कुत्ते के साथ एक व्यक्ति

एक व्यक्ति जिसका मिजाज बिगड़ा हुआ हो

कक्षा में बच्चों को उनकी नाटिका के लिये तैयार करना

इसके लिये एक पूरे पाठ की जरूरत हो सकती है।

1. यदि बच्चों को अलग अलग चरित्र निभाने की आदत नहीं है, तो आप शुरू में चरित्र के भीतर घुसने में उनकी मदद कर सकते हैं। आपके कार्डों पर लिखे चरित्रों में से किसी एक को बोर्ड पर लिखना है।

2. उस चरित्र के शारीरिक रूप के बारे में सोचने के लिये बच्चों की मदद करें। स्वयं या फिर बच्चों से उस चरित्र की तस्वीर बोर्ड पर बनाने को कहें। फिर बच्चों से अपनी कल्पनाशक्ति का प्रयोग करने को कहें और उनसे यह दिखाने को कहें कि वह चरित्र कैसे खड़ा होता है, कैसे चलता है, किस तरह अपना सिर पकड़ता है इत्यादि।

3. चरित्र के व्यक्तित्व से तारतम्य स्थापित करने के लिये कुछ इस तरह से उनकी मदद करें। चरित्र के दिमाग में से निकलता हुआ एक विचार वृत्त बनाएं। यदि चरित्र थका हुआ या बुरे मिजाज में है, तो आप बच्चों से पूछ सकते हैं कि उन्हें ऐसा क्यों लगता है। बच्चों से पूछें कि उन्हें क्या लगता है कि वह चरित्र क्या सोच रहा है और क्या महसूस कर रहा है।

4. सभी बच्चों से खड़े होने को कहें और फिर उनसे वह चरित्र बनने को कहें। उनके द्वारा उपयोग किये जाने वाली शारीरिक मुद्राओं और भंगिमाओं पर अपनी टिप्पणी दें और उन्हें जितना संभव हो उतना सृजनशील होने के लिये प्रोत्साहित करें।

5. उनसे उस चरित्र के अंदाज में अपना नाम बुलवाएं। अपनी आवाजों का प्रयोग वे किस तरह करते हैं इस पर टिप्पणी करें।

नाटिका की तैयारी करना

6. आपने जो चरित्र चुने हैं उन्हें बोर्ड पर लिख दें। बच्चों को बता दें कि वे सब कोई न कोई चरित्र बनने जा रहे हैं। आप पहले, दूसरे और तीसरे चरण को दोहरा सकते हैं यदि आपको लगता है कि कक्षा को अपने चरित्र से तारतम्य बिठाने में मदद चाहिए।

7. कार्ड बांट दें और बच्चों से अपना अपना चरित्र होने की कल्पना करने को कहें।

8. यदि आप किसी वार्तालाप का इस्तेमाल करने जा रहे हैं तो उसे बच्चों को सिखा दें।

9. बच्चों को स्थिति समझा दें, उदाहरण के लिये—किसी बस में हो सकता है कि आप दृश्य के हिसाब से कुछ डेस्क और कुर्सियां खिसकाना चाहें, इसमें बच्चों की मदद ले लें। सारा दृश्य सरल ही रखें। यह सुनिश्चित कर लें कि प्रवेश और निकास स्थान सुस्पष्ट हों — उदाहरण के लिये—कमरे के दरवाजे, चौराहे पर मिलती सड़कें एवं किसी घर का प्रवेश द्वार।

10. बच्चों को जोड़ों या छोटे समूहों में बांट दें। वार्तालाप पर काम करने के लिये उन्हें काफी समय दें। उन्हें याद दिला दें कि वे जगह का पूरा उपयोग करें न कि एक जगह खड़े होकर अभिनय करते रहें। जब वे यह काम कर रहे हों तो उनके बीच में घूमते रहें और उनकी नाटिकाओं पर टिप्पणी करें।

नाटिका का प्रदर्शन

11. इसी पाठ में या फिर किसी दूसरे पाठ में, कुछ समूहों से अपनी नाटिकाएं दिखाने को कहें। बाकी कक्षा अनुमान लगाएगी कि वे कौन हैं।

12. इन प्रदर्शनों पर अपनी प्रतिक्रिया दें। बच्चों से पूछें कि उन्हें क्या अच्छा लगा और प्रदर्शन को और कैसे सुधारा जा सकता है।

13. यदि आप यह गतिविधि नियमित रूप से करने वाले हैं और यदि उचित हो, तो गतिविधियों के सकारात्मक बिन्दुओं और बच्चों द्वारा दिये गये सुझावों का एक पोस्टर बनाएं। अगली बार जब आप ऐसी गतिविधि करेंगे तो बच्चे उससे मार्गदर्शन ले सकते हैं।

टिप्पणियां—यदि आपके बच्चे इस प्रकार की गतिविधि के लिये नये हैं, तो पहला भाग बच्चों को उनकी नाटिका के लिये तैयार करना। संभवतः एक पूरा पाठ ले सकता है। यदि आप किसी नाटक की तैयारी कर रहे हैं, तो आप इस गतिविधि का उपयोग बच्चो को उनकी भूमिकाओं को विकसित करने में तथा अपने संवादों को याद करने में मदद करने के लिए कर सकते हैं।

विविधताएं. यदि आपके पास वीडियो कैमरा है, तो समूहों के प्रदर्शन देने की बजाय आप दृश्यों का वीडियो बना सकते हैं।

—बच्चे दृश्य के लिये संवाद लिख सकते हैं या उसका वर्णन लिख सकते हैं।

के साथ इन इशारों का अभ्यास करें और फिर उनसे पूछें कि क्या उन्हें लगता है कि वे इशारे स्पष्ट हैं या वे उन्हें बदलना चाहते हैं।

7. कुछ बच्चों से बारी—बारी से कक्षा को नियंत्रित करवाएं। उनकी भंगिमाओं पर टिप्पणी दें, पर पहले उन्हें यह स्पष्ट कर दें कि भंगिमाएं और हाव भाव बड़े तथा जानबूझकर किये गए होने चाहिए और अचानक नहीं बदले जाने चाहिए।

8. हर समूह से एक संगीत सभा की तैयारी करने को कहें। जब समूहों की तैयारी पूरी हो जाए तो वे अपने अपने कार्यक्रम को कक्षा के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं।

2. गाने, छंद और धुनें

गाने और छंद अभिनय के लिए पाठों के प्रचुर स्रोत उपलब्ध कराते हैं। ये छोटे बच्चों की कक्षाओं में खासतौर पर लाभप्रद साबित होते हैं, जो कई बार अपनी खुद की भाषा नहीं बना पाते। लय और माधुर्य की मदद से भाषा को सीखना और उसे याद रखना आसान हो जाता है तथा शारीरिक गतिविधि और मुद्राएं अर्थ को स्पष्ट करने में मदद करते हैं। गाने बच्चे के पूरे व्यक्तित्व को हर तरह से – दृश्य के श्रवण और गत्यात्मक (शारीरिक) माध्यमों के द्वारा आकर्षित करते हैं। गाने, छंद और धुनें एक ज्यादा स्वतंत्र तरह के अभिनय की ओर शुरुआती कदम हो सकते हैं। बच्चों को शब्द देकर हम उन्हें स्वतंत्र छोड़ देते हैं ताकि वे शारीरिक भाषा और मुद्राओं के द्वारा भावनाओं तथा चरित्र को अभिव्यक्त करने पर ध्यान दे सकें। बाद में, जब उनका आत्मविश्वास बढ़ जाता है और वे अपने शरीर की संभावनाओं से परिचित हो जाते हैं, तब वे अपने खुद के शब्द भी इस्तेमाल करने लग सकते हैं।

आप अक्सर देखेंगे कि निर्देश दो हिस्सों में होते हैं। पहले भाग में बच्चे एक पूरी कक्षा की तरह से गाने या गीत के शब्दों और उसके अनुसार भंगिमाओं को सीखते हैं। दूसरे भाग में वे छोटे–छोटे समूहों में अपने खुद के रूपांतर पर काम करते हैं। वे भंगिमाओं को बदल कर या गद्य को अपनाकर इसे अपना रंग दे सकते हैं। आमतौर पर सबसे अच्छी बात होती है कि ये दोनों भाग अलग–अलग पाठों में आएं। पाठों के बीच का जो समय होता है उससे भाषा को मन में बिठाने और आत्मसात करने का मौका मिलता है, फिर बाद में भंगिमाओं और छंद को जोड़ना आसान हो जाता है।

किसी गतिविधि पर कितना नियंत्रण रखना है इसके बारे में शिक्षकों और बच्चों, दोनों का दृष्टिकोण अलग हो सकता है। शिक्षक के लिए कभी–कभी यह मुश्किल होता है कि बच्चों को उनके काम में पूरी स्वतंत्रता दे दी जाये और कुछ बच्चे निर्णय करने के लिये मिली पूरी स्वतंत्रता के बीच असहज महसूस करते हैं। आपको यह तय करना होगा कि आप किस तरह का संतुलन चाहेंगे और फिर उसकी तरफ कदम दर कदम आगे बढ़ें।

2.1 गीत का आयोजन

स्तर सभी

आयु वर्ग सभी

समय 10–15 मिनट

उद्देश्य–भाषा– शब्दों पर जोर देने और लय का अभ्यास करना

अन्य– सामूहिक रूप से गाने का अभ्यास करना, शारीरिक मुद्राओं और सामूहिक गतिशीलता के द्वारा संवाद करने पर काम करना।

वर्णन– बच्चे एक लघु गीत सीखते हैं और उसे सामूहिक रूप से गाते हैं। वे अपने शब्दों की गति और स्वर को नियंत्रित करने के लिये शारीरिक मुद्राएं ईजाद करते हैं और एक संगीत सभा की तैयारी करते हैं।

सामग्री–यदि आप चाहते हैं कि बच्चे पढ़ने का अभ्यास करें, तो बड़े–बड़े कार्ड बनाएं। प्रत्येक पर उस गीत का एक शब्द या वाक्यांश लिखा हो।

टिप्पणियां–यह तकनीक किसी भी लघु छंद या गीत के साथ उपयोग की जा सकती है। इस वर्ग के दूसरे छंद और गीत तैयार करने में भी यह तकनीक उपयोगी है।

2.3 मैं बड़ा हूं, मैं छोटा हूं

स्तर – 1

आयु वर्ग– ए व बी

समय 20 मिनट कविता सीखने के लिए। 20 मिनट प्रदर्शन की तैयारी के लिए (किसी दूसरे पाठ में)।

उद्देश्य भाषा– विशेषणों (*बड़ा, छोटा, नाटा, लंबा, अच्छा, बुरा, खुश, दुखी*) को प्रस्तुत करना और उनका अभ्यास करना।

अन्य– बच्चों को प्रेरित करना कि वे अलग–अलग गतिविधियों के साथ उनके अनुरूप विशेषणों को जोड़ें तथा सामूहिक गतिशीलता पर काम करें।

वर्णन–बच्चे किसी कविता पर अभिनय करते हैं

तैयारी 1. कविता को याद करें

मैं बड़ा हूं, मैं छोटा हूं

मैं बड़ा हूं।

मैं छोटा हूं।

मैं नाटा हूं।

मैं लंबा हूं।

मैं खुश हूं।

मैं दुखी हूं।

मैं अच्छा हूं।

मैं बुरा हूं।

हम दोस्त हैं।

कविता पूरी हुई।

2. इन चित्रों का अभ्यास करें।

कक्षा में कविता याद करना

1. विशेषणों को सिखाने के लिए यहां दिए गए चित्रों जैसे चित्र बोर्ड पर बनाएं।

2. प्रत्येक विशेषण के लिए बच्चों से कोई भंगिमा या स्वांग सुझाने को कहें।

3. आप विशेषण बोलते जाएं और बच्चों से उनके अनुसार भंगिमाएं बनवाएं।

4. एक चरित्र के मुंह से निकलता हुआ एक संवाद–गोला बनायें। उसमें *मैं बड़ा* हूं लिखें। बाकी चरित्रों के लिये भी संवाद–गोले बनायें और बच्चों से पूछें कि वे क्या कह रहे हैं। शब्दों को इन गोलों में लिख दें।

5. बच्चों से खड़े होने को कहें। कविता की पहली आठ पंक्तियां एक साथ कहें, साथ में भंगिमाएं भी बनाते

जाएं।

मैं बड़ा हूं।

मैं छोटा हूं।

मैं नाटा हूं।

मैं लंबा हूं।

मैं खुश हूं।

मैं दुखी हूं।

मैं अच्छा हूं।

मैं बुरा हूं।

6. फिर उन्हें अंतिम दो पंक्तियां सिखाएं और उनसे इन पंक्तियों के लिये उपयुक्त भंगिमा या स्वांग के बारे में सोचने को कहें।

हम दोस्त हैं।

कविता पूरी हुई।

7. कविता कहते हुए भंगिमाएं दोहराएं।

कविता पर अभिनय करना

1. कविता को कक्षा के सामने रखें, उसे बोलते जाएं और साथ में भंगिमाएं भी बनाते जाएं।

2. बच्चों को चार या आठ के समूहों में बांट दें। उन्हें बताएं कि आप उनसे पूरी कविता पर अभिनय कराना चाहते हैं। इस समय या तो आप बच्चों को मार्गदर्शन दे सकते हैं या फिर उन्हें स्वतंत्र रूप से काम करने दे सकते हैं। यह निर्भर करेगा बच्चों की उम्र पर तथा अकेले काम करने के उनके अनुभव पर। किसी भी स्थिति में उन्हें ये चीजें तय करना होंगी।

कविता का कौन सा भाग किसको कहना है (प्रत्येक बच्चा एक पंक्ति कहे सब मिलकर कहें)

. वे किस तरह खड़े होंगे?(लाइन में या गोले में?)

. क्या वे चलेंगे–फिरेंगे? (आगे–पीछे चलेंगे या गोले में)

. कविता कैसे शुरू होगी और कैसे खत्म होगी?

3. बच्चों को अपनी प्रस्तुति का अभ्यास करने के लिए 10–15 मिनट दें। जब वे उस पर काम कर रहे हों, तो कक्षा में चक्कर लगाते हुए उन्हें प्रोत्साहित करते रहें और जहां जरूरी हो वहां उनकी मदद करें। उन्होंने जो कुछ भी किया हो उस पर अपनी निष्पक्ष राय दें। यदि आप यह कहें कि आपको उनका काम पसंद आया, तो उनके काम पर और रोशनी डालने के लिये उन्हीं से पूछें कि उन्हें क्या लगता है कि आपको उनका काम क्यों पसंद आया।

बाद की गतिविधि. एक या ज्यादा समूहों से अपनी कविता को कक्षा के समझ प्रस्तुत करने को कहें।

. कविता के लिये बच्चे खुद ही तस्वीरें बनाएं।

विविधता 1. बड़े बच्चों के साथ आप इस गतिविधि को और चुनौतीपूर्ण और सृजनात्मक बना सकते हैं। कविता की पहली चार पंक्तियां प्रस्तुत करके शुरुआत करें, और फिर लोगों तथा उनकी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिये

दूसरे विशेषणों (जैसे *वृद्ध, युवा, गर्म, ठंडा, गंदा, स्वच्छ, दयालु, स्वार्थी*) के बारे सोचने के लिए अपने अपने दिमाग लड़ाएं। बच्चों से कविता में चार या आठ पंक्तियां और जोड़ने को कहें। फिर उनसे ऊपर की ही तरह अपनी प्रस्तुति को तैयार करने को कहें।

विविधता 2 कविता में आ रहे व्यक्ति को बदल दें, जैसे इसके लिए *तुम, वह, हम या वे* का इस्तेमाल कर सकते हैं। पर प्रस्तुति में की जानी वाली भंगिमाओं से कर्ता सर्वनाम का तात्पर्य अर्थात वह किसके लिए आ रहा है यह बिलकुल स्पष्ट समझ में आना चाहिए।

3 पुतलियां और सहायक वस्तुएं बनाना

छोटे विद्यार्थियों की कक्षा में पुतलियां काफी बहुउपयोगी साधन होती हैं। बच्चे उन्हें बनाते समय भाषा का उपयोग करते हैं। कई बार वे शिक्षक की तुलना में पुतलियों की सहायता से समझायी गयी बात जल्दी समझते हैं और आमतौर पर बच्चों को पुतलियों को चलाने के प्रति काफी उत्साह रहता है। पुतली बनाने की प्रक्रिया अपने आप में एक लाभप्रद कला की गतिविधि है और अंतिम उत्पाद वस्तु, पुतली आगे की गतिविधि में अहम भूमिका अदा करती है।

जिस तरह बच्चे पुतलियों की ओर प्रतिक्रिया करते हैं, वह देखना बहुत आकर्षक होता है। वे हकीकत को भी छोड़ने के लिये तैयार होते हैं और पुतली के साथ ऐसे बर्ताव करते हैं जैसे वह वास्तविक हो। यह विद्यार्थियों को भाषा का सृजन करने के लिए प्रेरित करने का उपयोगी तरीका है। (अंग्रेजी पढ़ाने के संदर्भ में) कई शिक्षकों के पास सिर्फ अंग्रेजी बोलने वाली पुतली होती है और वे अपने बच्चों से पूरे पाठ के दौरान अंग्रेजी बुलवाने के लिए प्रभावशाली ढंग से इसका उपयोग कर सकते हैं। इसके अलावा पुतलियां संवाद की वास्तविक चुनौतियों को प्रस्तुत करती हैं क्योंकि बच्चे दूसरे विद्यार्थियों द्वारा बनायी गई पुतलियों के नाम, उम्र, पसंद और नापसंद खोजने की कोशिश करते हैं। जब बच्चे किसी पुतली को अपने वक्ता के रूप में इस्तेमाल करते हैं, तो वे अक्सर अपनी चुप्पी से निजात पाते हैं और उसके पीछे छुपकर वे उस गतिविधि में जिस तरह से भाग ले पाते हैं, अगर उन्हें खुद वह भूमिका करने को कहा जाए, तो वे शायद उस तरह से न कर पाएं। भाषा सीखने की तरफ एक सीढ़ी पार हो जाती है।

इस अध्याय में आप विभिन्न तरह की पुतलियों को बनाने के निर्देश पाएंगे। वे सभी बहुत सरल हैं तथा अस्थायी तरीकों जैसे मुट्ठियों पर चेहरे से लेकर लंबी चलने वाले तरीके जैसे मोजे वाली पुतलियां शामिल हैं। आप पहले से तैयार पुतलियां भी इस्तेमाल कर सकते हैं, पर यदि बच्चे खुद उन्हें बनाएंगे तो उनके भीतर पुतलियों के प्रति अपनत्व का एहसास होगा जब वे उन्हें नाटक की गतिविधियों में इस्तेमाल करेंगे। इस तरह से गाना, संवाद, प्रकटीकरण, नाटक सब कहीं ज्यादा व्यक्तिगत और यादगार हो जाते हैं। अधिकांश पुतलियां 10–15 मिनट में बनायी जा सकती हैं और फिर आप भाषा पैदा करने के लिये उनका उपयोग करने पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं।

यहां बड़े सरल पुतली रंगमंच बनाने के लिए भी निर्देश दिए गए हैं। ये रंगमंच बुनियादी हैं और जब बच्चे कक्षा के अपने बाकी साथियों को पुतलियों की गतिविधियां दिखाते हैं, तो ये उसे एक अलग रंग प्रदान करते हैं क्योंकि इन गतिविधियों का मुख्य उद्देश्य जनता के लिए कुछ बनाना नहीं है बल्कि पुतलियों के इस्तेमाल में बच्चों को आने वाले मज़े का भाषा निर्माण के लिये उपयोग करना है।

अध्याय के आखिरी भाग में सरल सहायक सामग्री बनाने के लिए कुछ निर्देश दिए गए हैं। जैसे–टोपी या मुखौटे, जिन्हें आप गाने, स्वांग या नाटक करते समय इस्तेमाल कर सकते हैं। ये सब बनाना आसान है और इनके लिये बड़ी विस्तृत सामग्री या बहुत अधिक समय की जरूरत नहीं होती। इसके बावजूद ये बच्चों को उनकी भूमिका के भीतर घुसने में तथा नाटक की दुनिया का हिस्सा बनने में मदद करने के लिए बहुत उपयोगी उपकरण हैं। पुतलियों की तरह ये उन बच्चों के लिये कवच का काम करते हैं जिन्हें बोलने में झिझक महसूस होती है।

3.1 उंगली पर चेहरा

स्तर 1.2

आयु समूह अ व ब

समय 5.10 मिनट

वर्णन बच्चे अपनी उंगलियों पर चेहरे बनाते हैं। वे अपने लिए टोपी या स्कर्ट भी बना सकते हैं।

उद्देश्य **भाषा**. निर्देशों का पालन करना।

अन्य– अभिनय करने के लिए पुतलियां तैयार करना या हस्त–संयोजन पर काम करना।

सामग्री–धोए जा सकने वाले (वॉशेबल) फेल्ट–टिप वाले पेन सफेद या रंगीन कागज की पट्टियां यदि आप स्कर्ट बनाना चाहते हों, तो कैंची और उंगलियां।

तैयारी– अपनी उंगली पर पुतली बनाने का अभ्यास करें।

कक्षा में –1. बच्चों को बता दें कि उन्हें पुतली बनाना है और आप उन्हें उसे बनाना सिखाने वाले हैं।

2. वॉशेबल पैनों से अपनी पहली उंगली की आधी उंचाई तक एक चेहरा बनाए।

3.कागज की एक पट्टी लें और उसे अपनी उंगली के सिरे से लगाते हुए गोलाकार में चिपका लें।

4. बच्चों से पूछ लें कि उन्हें किस किस चीज की जरूरत है। सुनिश्चित कर लें कि गतिविधि शुरू करने से पहले सभी के पास जरूरी सामग्री हो।

5. बच्चों को अपनी पुतलियां बनाने के लिये 5–10 मिनट दें।

विभिन्नता–बच्चे अपने साथी की उंगली पर पुतली बनाते हैं।

3.2 मुट्ठी पर चेहरा

स्तर – 1.2

आयु समूह– अ व ब

समय– 5.10 मिनट

उद्देश्य–भाषा– निर्देशों का पालन करना।

अन्य– पुतलियां बनाना।

वर्णन– बच्चे अपनी मुट्ठियों पर चेहरे बनाते हैं (चित्र देखें)। वे पुतली से बुलवाने के लिये अपने अंगूठे को उठा–बिठा सकते हैं।

सामग्री– वॉशेबल फेल्ट–टिप पेन और हाथ।

तैयारी– अपनी मुट्ठी पर पुतली बनाने और उसे बात करवाने का अभ्यास करना।

कक्षा में– 1. यदि आप किसी नाटक के लिये पुतलियों का उपयोग करने वाले हों, तो बच्चों को बता दें कि चरित्र कौन–कौन से हैं।

2. उनसे अपनी मुट्ठियां बंद करने को कहें और उन पर आंखें, होंठ और बाल बनाने को कहें।

3. अपने अंगूठे को उठाने और बैठाने का अभ्यास करें ताकि आप बच्चों को दिखा सकें कि पुतली को बोलते हुए कैसे दिखाना है।

4. बच्चों को जोड़ों में बांट दें और उनसे एक–दूसरे की मुट्ठियों पर पुतलियां बनवाएं।

3.3 उंगली पर चढ़ायी जाने वाली पोंगली की पुतली (फिंगर ट्यूब पपेट)

स्तर– 2.3

आयु समूह– अ व ब

समय– 15 मिनट

उद्देश्य– भाषा– निर्देश देना और प्राप्त करना या शारीरिक शब्दावली।

अन्य– सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करना और कक्षा में इस्तेमाल करने हेतु पुतलियां बनाना।

वर्णन–बच्चे कागज की एक पोंगली बनाते हैं ताकि उसे अपनी उंगली पर फिट कर सकें। वे उस कागज पर एक चेहरा और पोशाक बना देते हैं। इन पुतलियों में यह फायदा है कि यह थोड़ा ज्यादा समय तक चल सकते हैं और सिर्फ उंगली पर चेहरा बना लेने की तुलना में ज्यादा विस्तृत हो सकते हैं। आप इन पुतलियों को छंद – लालाजी लालाजी एक लड्डू दो – के साथ प्रयोग कर सकते हैं।

सामग्री– सफेद या रंगीन कागज के टुकड़े और रंगीन पेन या फैल्ट टिप वाले पेन।

तैयारी– बच्चों को दिखाने के लिए एक पुतली खुद तैयार करें।

कक्षा में– 1. बच्चों को अपनी पुतली दिखाएं और उन्हें बताएं कि उन्हें भी वैसी ही पुतली बनाना है।

2 कागज का आयताकार टुकड़ा काट लें। उसे बच्चों की उंगलियों की ऊंचाई के लगभग होना चाहिए और इतना लंबा होना चाहिए कि उसे दो बार लपेटा जा सके। दोहरा लपेटने से कागज को थोड़ी और मजबूती मिल जाती है।

3. पुतली के नैन–नक्श बनाएं। रंगीन कागज के टुकड़े और रंगीन पेनों का इस्तेमाल करते हुए उसके बाल, कान व बटन इत्यादि बनाएं। जब आप ऐसा करें तो *कान बनाएं, सिर पर चिपकाएं* जैसे सरल निर्देश देते चलें।

4. बच्चों से पूछें कि उन्हें कौन–कौन सी सामग्री चाहिए और उन्हें बता दें कि शुरुआत के पहले वे यह सुनिश्चित कर लें कि उनके पास सारी सामग्री मौजूद हो।

5. एक बार फिर निर्देशों को दोहराएं।

6. उन्हें बताएं कि वे बारी–बारी से एक–दूसरे को पुतली बनाने के बारे में निर्देशित करते रहें। जब वे काम कर रहे हों, कक्षा में घूमें, उनके काम पर टिप्पणी करें और जरूरत हो तो उनकी मदद करें।

7. एक सरल–सी पुतली बनाने में बच्चों को लगभग 15 मिनट लगेंगे। पर यदि वे कुछ ज्यादा विस्तृत पुतली बनाना चाहते हों तो वे ज्यादा समय भी ले सकते हैं।

3.4 स्पंज पुतली

स्तर– सभी

आयु समूह– अ व ब

समय– 20 मिनट

उद्देश्य–भाषा– निर्देशों का पालन करना।

अन्य– सहयोग पर काम करना और एक–दूसरे की मदद करना।

वर्णन बच्चे एक नहाने वाले स्पंज को आधार बनाकर पुतली बनाते हैं। आप इन पुतलियों को पाठ्यपुस्तक को सजीव बनाने में इस्तेमाल कर सकते हैं।

सामग्री हर बच्चे के लिये सस्ता नहाने वाला स्पंज, गोंद और कागज, कार्ड या फेल्ट के टुकड़े।

तैयारी बच्चों को दिखाने के लिए पहले खुद एक पुतली बनाएं।

कक्षा में– 1. अपनी जरूरत का सारा सामान पास में ही रखें। बच्चों को स्पंज दिखाएं और उनसे कहें कि जब आप पुतली बनाएं तो वे लोग आपको ध्यान से देखें। उन्हें सिखाते समय पूरी प्रक्रिया को जबानी बताते चलें।

2. अपनी उंगलियों और अंगूठे के लिये स्पंज के पीछे छेद कर लें।

3. आंख, कान, बाल, दांत इत्यादि काट के बनाएं, फिर इन्हें स्पंज पर चिपका दें।

4. छेदों में अपनी उंगलियां डालें और उनका उपयोग स्पंज को बात करवाते दिखाएं।

5. बच्चे काम शुरू करें इसके पहले उनसे उनकी जरूरत की सामग्री इकट्ठी करवा लें।

6. उनसे जोड़ियों में अपनी पुतलियां बनाने को कहें, जहां वे एक–दूसरे की मदद भी करते रहें और सुझाव भी देते रहें।

7 जब वे लोग अपनी पुतलियां बना रहे हों तो कक्षा में घूमें और उन्हें प्रेरित करते रहें।

3.5 ओरीगमी पुतली

स्तर– सभी

आयु समूह– ब व स

समय– आधार स्वरूप बनाने के लिए 15 मिनट और उसे सजाने के लिए 15 मिनट।

उद्देश्य– भाषा– बोले जा रहे निर्देशों का पालन करना।

अन्य– हस्त कौशल विकसित करना। शारीरिक लक्षणों के आधार पर एक चरित्र गढ़ें।

सामग्री– ए 4 आकार का एक कागज जो कम–से–कम एक तरफ खाली हो या मोमचॉक या फेल्ट नोक वाले पेन, रंगीन कागज, कैंचियां एवं गोंद।

वर्णन– बच्चे बोले गए निर्देशों का पालन करते हैं और एक ए4 आकार के कागज के टुकड़े से एक ओरीगामी पुतली बनाते हैं। इन पुतलियों को इस्तेमाल करने हेतु 4.8 पुतलियों के वार्तालाप में एक सुझाव दिया गया है।

तैयारी– 1 पुतली का आधार स्वयं बनाएं। सुनिश्चित कर लें कि आप उसे हवा में बना सकें ताकि अपने बच्चों को सारे मोड़ दर्शा सकें।

2 पुतली कैसे बनाना है इसको समझाने का अभ्यास करने के लिए हो सके, तो पहले अपने किसी साथी को

यह समझाकर देखें। इससे आपको संभावित समस्याओं के बारे में पता चल सकता है।

3 बच्चों को दिखाने के लिए एक पुतली बनाएं और उसे सजाएं।

कक्षा में– 1. अपनी पुतली बच्चों को दिखाएं और उन्हें बताएं कि उन्हें भी वैसी ही एक पुतली बनाना है।

2. कागज बांट दें।

3. पुतली बनाने के लिए इस प्रकार के निर्देश दें

कागज को बीच में से इस तरह मोड़ लें

अब इसे फिर से बीच में से मोड़ लें

अब इसे इस तरह मोड़ें

अब इस तरह का एक जिगजैग बनाएं

इन छोटी–छोटी जेबों को देखें

अपनी उंगलियां इन जेबों में डालें और अपनी पुतली को बोलता हुआ दिखाएं।

4. पहले ऊपर के निर्देशों के अनुसार बच्चों से जोड़ों में पुतलियां बनवाएं फिर वे अपने खुद की पुतली बना सकते हैं।

5. जब वे अपनी पुतली बना चुके हों, तब बच्चों को उसका चेहरा बनाना सिखाएं। बच्चे कागज की आकृतियों को काटकर चिपका सकते हैं।

3.6 मोजे की पुतली

स्तर– सभी

आयु समूह– ब व स

समय– 40 मिनट

उद्देश्य–भाषा– निर्देशों का पालन करना।

अन्य– कहानी में इस्तेमाल के लिए पुतली तैयार करना।

वर्णन– बच्चे एक मोजे को आधार बनाकर एक पुतली बनाते हैं। जब आप अपनी चार उंगलियां मोजे के अंगूठे वाले सिरे में रखते हैं और अपनी हथेली या अपना अंगूठा मोजे की एड़ी में रखते हैं, तो आप एक चेहरा बनाते हैं, जो खुलता और बंद होता है। हालांकि इन्हें बनाने में ज्यादा समय लगता है, पर ये पीछे बतायी गयी पुतलियों से ज्यादा मजबूत होते हैं और ज्यादा समय तक चलते हैं। वे आपकी अपनी पुतली के रूप में इस्तेमाल किये जाने के लिए भी उपयुक्त हैं, जो सिर्फ अंग्रेज़ी बोलती है।

4.1 हां और ना वाली पुतलियों में इन्हें इस्तेमाल करने के लिए एक सुझाव दिया गया है।

सामग्री– प्रत्येक बच्चे के लिये एक पुराना मोजा, रंगीन ऊन, आंखों के लिए टेबल टेनिस की गेंदें या सूती ऊन की गेंदें (वैकल्पिक), रंगीन कार्डों या फेल्ट के टुकड़े, रंगीन पेन या मोमचॉक।

तैयारी– 1. इस पाठ के कम–से–कम एक हफ्ता पहले बच्चों से कह दें कि उन्हें एक पुराना मोजा लेकर आना है। बच्चों के खुद के मोजे शायद छोटे पड़ गए किसी बड़े बच्चे या फिर किसी वयस्क वयक्ति का मोजा

उपयुक्त रहेगा।

2. कई पुतलियां बनाएं, प्रत्येक पूर्णता के अलग अलग चरणों पर। ये तब उपयोगी रहेंगी जब आप बच्चों को यह दिखाएंगे कि पुतली कैसे बनाना है।

कक्षा में— 1. अपनी पूर्ण हो चुकी पुतली को बच्चों को दिखाएं और उन्हें बताएं कि उन्हें भी वैसी ही पुतली बनाना है।

2. बच्चों को वे सारी सामग्री दिखा दें, जो उन्हें लगने वाली है, उनके नाम बता दें और बोर्ड पर उनकी एक सूची लिख दें। अब बच्चों से कहें कि वे अपनी जरूरत की साम्रगी का इंतजाम करें।

3. गतिविधि के सारे चरण उन्हें एक—एक करके दिखाएं। उन्हें समझाएं कि उन्हें क्या करना है, साथ में उनके सामने उसका प्रदर्शन भी करते जाएं। जब सारे बच्चे एक चरण पूरा कर लें उसके बाद ही अगला चरण दर्शाएं। पुतली इस तरह से बनाएं। अपना हाथ मोजे में डालें और उस जगह निशान बना दें जहां बाल रहेंगे। अब उस जगह पर ऊन के छोटे टुकड़ों को या तो चिपका दें या फिर सिल दें।

4. कार्ड में से एक अंडाकार टुकड़ा काट लें जो मोजे के मुंह के अंदर फिट बैठता हो। इसे लाल रंग से रंग दें और जगह पर चिपका दें। आप दांत और जीभ भी चिपका सकते हैं। ये कोई सांप या ड्रैकूला बनाने के लिये बड़े उपयोगी होंगे।

5. अब टेबल टेनिस या सूती ऊन की गेंदों से आंखें बना दें या फिर कार्ड के टुकड़ों पर काले बिन्दु बनाकर भी आप ऐसा कर सकते हैं। अब उन्हें जगह पर चिपका दें।

विविधता—आप एक मोजे और एक दस्ताने का इस्तेमाल करके बाहों वाली एक सरल—सी पुतली बना सकते हैं। बाहों के लिए मोजे में छेद कर लें और दस्ताने को मोजे के भीतर पहन लें।

4 पुतलियों का इस्तेमाल

पिछले अध्याय में बताए गए उपयोगों के अलावा भी पुतलियों के कई अन्य उपयोग हैं। पुतलियों को गानों, धुनों, संवादों, नये प्रयोगों और अध्याय 5 में बताए गए नाटकों में इस्तेमाल किया जा सकता है। इनसे बच्चों को छोटी—सी से जगह में भी, अभिनय में व भाषा के इस्तेमाल में अपनी कल्पना शक्ति का खुलकर उपयोग करने का प्रोत्साहन मिलता है। पुतलियां आपको विशेष पात्र जैसे भूत, दानव, डायनासौर इत्यादि बनाने का मौका देती हैं, जिन्हें मंच पर प्रदर्शित करना मुश्किल होता है। इनका उपयोग आपके द्वारा बच्चों को सुनाई जाने वाली कहानियों में और बच्चों द्वारा खुद बनायी जानेवाली कहानियों में हो सकता है।

पुतलियों को इस्तेमाल करने में उसी तरह के कौशल की जरूरत होती है जैसा अभिनय के लिए जरूरी होता है जैसे — अपनी आवाज का उपयोग करना, पुतलियों का इस्तेमाल कर रहे लोगों के बीच सहयोग का होना और चीजों को याद रखना — पर इसके अलावा इसमें कुछ अलग कौशल भी जरूरी होता है। पुतली चालकों को सीखना होता है कि पुतलियों को कैसे चलाना है। इसके अलावा उनका मुंह समय पर खोलना, पुतलियों को स्थिर रखना, उनको उचित तरीके से पलटाना और इधर—उधर चलाना और साथ ही सावधानी से भीतर प्रवेश कराना और बाहर निकालना — ये सब सीखना जरूरी होता है। किसी व्यावसायिक पुतली चालक के भीतर ये सभी कौशल होना अनिवार्य होता है पर बच्चों के लिये तो पुतलियों पर इतना नियंत्रण रखना जरूरी है जिससे उनका नाटक या नाटिका रोचक बन जाए और दर्शकों के रूप में बैठे उनके साथियों को समझ में आए। यदि आप बच्चों से इन पुतलियों का नियमित रूप से उपयोग करने के लिए कहने वाले हों, तो प्रतिक्रिया सत्रों में इन कौशलों पर ध्यान केन्द्रित करना उचित होगा तथा बच्चों में उनके प्रति जागरुकता पैदा करने में उनकी मदद करना होगी।

पुतलियां, बच्चों द्वारा भाषा की अपनी कक्षा में की जाने वाली गतिविधियों में विविधता और कभी—कभी जादुई

एहसास जोड़ देती हैं। आप पाएंगे कि जो बच्चे हर समय सहयोग नहीं करते या जो कक्षा में बहुत अधिक रुचि नहीं दिखाते, उनका रुख भी पुतलियों के प्रति बड़ा सकारात्मक हो जाता है। इस गतिविधि में दृश्य, श्रवण और शारीरिक माध्यम का ऐसा गठजोड़ होता है जो बच्चों को आकर्षित कर ही लेता है।

4.1 *हां* और *ना* वाली पुतलियां

स्तर–सभी

आयु समूह– अ व ब

समय– 20 मिनट

उद्देश्य– भाषा– किसी दी गई वाक्य–संरचना (इस उदाहरण में किसी के पास कुछ होना) के प्रश्नों, सकारात्मक बातों, नकारात्मक बातों को प्रस्तुत करना और उनका अभ्यास करना।)

अन्य– पुतलियों के साथ जोड़ों में काम करने का अभ्यास करना।

वर्णन– शिक्षक किसी संरचना के प्रश्नों, उसकी सकारात्मक तथा नकारात्मक बातों को प्रस्तुत करने के लिए एक लाल तथा एक हरे मोजे वाली पुतली का इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए– *क्या तुम्हारे पास है? हां, है। नहीं, नहीं है।* बच्चे अभ्यास करने के लिये अपनी खुद की पुतलियां बना सकते हैं।

सामग्री– लाल और हरे (या फिर कोई अन्य विरोधाभासी रंग वाले) रंग के दो मोजे वाली (या कोई अन्य) पुतलियां या अभ्यास के लिए जरूरी सामान। जैसे– *मुझे पसंद है* के लिए फल, *मेरे पास है* के लिए खिलौने, *मैं करने वाला हूं* के लिए अलग–अलग प्रकार की गेंदें, रैकेट इत्यादि।

तैयारी– 1 पुतलियां बनाएं।

2 प्रस्तुतीकरण का अभ्यास करें, खासतौर पर यदि आपको पुतलियों का उपयोग करने की आदत नहीं है।

कक्षा में– इस उदाहरण में यह संरचना है– *क्या तुम्हारे पास है? हां, है। नहीं, नहीं है।* आप दूसरी संरचनाओं के लिये आवश्यकतानुसार यह प्रक्रिया अपना सकते हैं।

1. बच्चों को पुतलियां दिखाएं। यदि आप पहली बार उनका इस्तेमाल कर रहे हों तो बच्चों को उनके नाम बताएं। उदाहरण के लिए– **योलैंडा हां** ;हरी पुतली) और **निकी ना** ;लाल पुतली)। उन्हें समझाएं कि योलैंडा हां हमेशा *हां* कहता है, जबकि निकी ना हमेशा *नहीं* कहता है ।

2. पुतली के द्वारा बच्चों से उनके नाम पुछवाएं, और एक हां नहीं वाला प्रश्न पुछवाएं (उदाहरण के लिए, *क्या तुम मेरे हो* यदि संभव हो तो बच्चों द्वारा पुतलियों से प्रश्न करने को कहें, जहां योलैंडा से *हां* उत्तर दिलवाएं और निकी से *नहीं।*

3. आप जो खिलौने लाए हैं वे बच्चों को दिखाएं। वैकल्पिक तौर पर आप किसी पेंसिल केस की वस्तुओं का भी उपयोग कर सकते हैं। यह सुनिश्चित कर लें कि जो भी चीज इस्तेमाल होने वाली हैं चाहे खिलौने या दूसरी वस्तुएं, बच्चे उनके नामों से परिचित हों।

4. बच्चों को स्थिति स्पष्ट कर दें कि योलैंडा और निकी की एक खिलौनों की दुकान है। योलैंडा बहुत सी चीजें बेचना चाहता है, जबकि निकी उन्हें अपने लिए रखना चाहता है।

शिक्षक गुड मॉर्निंग, योलैंडा। गुड मॉर्निंग, निकी

योलैंडा गुड मॉर्निंग।

निकी गुड मॉर्निंग।

योलैंडा क्या मैं आपकी कुछ मदद करूं?

शिक्षक मुझे एक कार चाहिए। क्या तुम्हारे पास कार है?

योलैंडा हां, हमारे पास है। (*शिक्षक को कार देने के लिये बढ़ता है*)।

निकी नहीं, हमारे पास नहीं है। (*कार छीन लेता है और उसे छुपा देता है*)।

शिक्षक अच्छा क्या तुम्हारे पास रोबोट है?

योलैंडा हां, हमारे पास है। (*शिक्षक को रोबोट देने के लिये बढता है*)।

निकी नहीं, हमारे पास नहीं है। (*उससे रोबोट ले लेता है और उसे छुपा देता है*)।

इसे तब तक जारी रखें जब तक आपको यह न लगने लगे कि अब बच्चे खुद पुतलियां इस्तेमाल करने के लिये तैयार हो चुके हैं।

5. बच्चों को प्रश्न सिखा दें और फिर उन्हें आपकी भूमिका करने दें और पुतलियों के माध्यम से प्रश्न पूछने दें।

6. जांचें कि क्या बच्चे जवाब दे पाते हैं और वार्तालाप की कोशिश करने के लिये तीन स्वयंसेवकों की मदद लें।

बाद की गतिविधि– बच्चे अपने खुद की पुतलियां बनाते हैं और तिकड़ियों में वार्तालाप का अभ्यास करते हैं।

(4.2 अनुमान लगाने वाले खेल

स्तर– सभी

आयु समूह– ब व स

समय– 10.15 मिनट

उद्देश्य–भाषा**–** शब्दावली को दोहराना और उसका पुनः इस्तेमाल करना, *हां या ना* वाले प्रश्न पूछना।

अन्य– बच्चों को प्रोत्साहित करना कि वे परिकल्पनाएं बनाकर तथा उनका परीक्षण करके प्रश्नों को सुलाझाएं।

वर्णन– बच्चों से हल करवाने के लिये एक प्रश्न बनाने के लिए शिक्षक एक पुतली का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिये, पुतली बच्चों को बताती है कि उसे क्या खाना पसंद है और क्या नहीं। इसका आधार भोजन का प्रकार भी हो सकता है (उदाहरण के लिये, उसे सफेद रंग का भोजन अच्छा लग सकता है, पर रंगीन नहीं) या उस खाद्य पदार्थ की स्पैलिंग हो सकती है (उदाहरण के लिये, उसे दोहरे अक्षर वाला भोजन अच्छा लग सकता है और बगैर दोहरे अक्षर वाला अच्छा नहीं लग सकता)। प्रश्न सुलझाने के लिये बच्चे पुतली से प्रश्न पूछते हैं।

सामग्री– एक पुतलीय फल और सब्जियां या उनके फ्लैशकार्ड।

कक्षा में– 1. बच्चों को फल और सब्जियां दिखा दें और सुनिश्चित कर लें कि बच्चों को उनके नाम पता हों।

2. उनसे पूछें कि उन्हें कौन से फल और सब्जियां पसंद हैं और क्या नापसंद है। जांच करें कि क्या वे *क्या आपकोकृकृपसंद है?* वाला प्रश्न पूछ सकते हैं।

3. उन्हें समझाएं कि पुतली उन्हें बताने वाली है कि उसे क्या पसंद है और क्या नापसंद तथा उन्हें इसके पीछे के कारण का अनुमान लगाना होगा।

4. पुतली से *मुझे गाजर पसंद हैं, मुझे सेव पसंद नहीं हैं, मुझे आलू पसंद हैं, मुझे संतरे पसंद नहीं है*

कहलवाएं। बच्चों को यह सोचने के लिये प्रेरित करें कि पुतली की पसंद और नापसंद में क्या बात साझा है (इस मामले में, उसे सब्जियां पसंद हैं पर फल नहीं)।

5. बच्चों से कहें कि वे जोडों में अपने विचारों की चर्चा करें और फिर अपने अनुमान की सच्चाई को परखने हेतु पुतली से पूछने के लिये कुछ प्रश्नों पर विचार करें।

6. बच्चों को उनके प्रश्न पूछने दें।

यदि बच्चे भ्रमित हो रहे हों, तो पुतली की पसंद–नापसंद की सूची बोर्ड पर लिख दें। उनको उत्तर की तरफ ले जाने के लिये जरूरी प्रश्न पूछें।

विविधता–यह गतिविधि अलग विषयों के साथ भी की जा सकती है, उदाहरण के लिये, खेल। पुतली से *मैं फुटबॉल नहीं खेल सकता, मैं तैर सकता हूं, मैं टेनिस नहीं खेल सकता, मैं स्की कर सकता* हूं ;पुतली गेंद के साथ खेले जाने वाले खेल नहीं खेल सकता)।

टिप्पणियां –एन्ड्रयू राइट की *1000 पिक्चर्स फॉर टीचर्स टू कॉपी* में लोगों द्वारा खेले जा रहे अलग–अलग खेलों की आसान तस्वीरें हैं।

कठपुतली मार्गदर्शिका जिसके लेखक मीना नाइक, अनुवाद राजेन्द्र पांडे, प्रकाशक नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया है। इस पुस्तक के माध्यम से छात्राध्यापक यह समझने में सक्षम होंगे कि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों को कठपुतली के माध्यम से सीखना कितना कारगर होता है।

कठपुतली का इतिहास

'कठपुतली' का इतिहास बहुत प्राचीन है। महाभारत, रामायण, पंचतंत्र, नैषधीय चरित्र, कथासरित्सागर, ज्ञानेश्वरी आदि अनेक ग्रंथों में कठपुतली संबंधी कला का उल्लेख आता है। महाभारत के इस लोक पर गौर करें :

परप्रयुक्तः पुरुषो विचेष्टते।

सूत्रप्रोता दासमयीव योषा।

अर्थात्, जिस तरह कठपुतली सूत्रधार की इच्छानुसार क्रिया–कलाप करती है, उसी तरह मानव ईश्वर की इच्छानुसार क्रिया–कलाप करता है।

कठपुतली यानी किसी युक्ति के सहारे हलचल करने वाले गुडडे–गुड़िया–पुतले। इन कठपुतियों का सूत्र संचालन जिसके जरिए होता है, वह सूत्रधार होता है। नाटक विधा में सूत्रधार की संकल्पना बहुत आम है। लेकिन मूलतः उसका आगमन कठपुतली के खेल से हुआ है। विद्वान मानते हैं कि भारतीय नाट्यकला का जन्म भी कठपुतली के खेल से हुआ है। कठपुतली तथा सूत्रधार को लेकर अनेक बातें हमारे यहां प्रचलित हैं। कठपुतली कला चौंसठ कलाओं में गिनी जाती है। पंचतंत्र में काष्ठचित्रक्रीड़न शब्द का प्रयोग किया गया है। काष्ठ यानी लकड़ी। क्रीड़न यानी खेल । अर्थात, लकड़ी के चित्रों का खेल। उसी तरह, यंत्रपुत्रकलीला का भी उल्लेख है। लीला यानी खेल। श्रीहर्षरहित नैषधीय चरित्र में उल्लेख आता है कि राजा नल के दरबार में हमेशा कठपुतली का खेल हुआ करता था। कथासरित्सागर में ऐसा जिक्र है कि एक राजकुमारी दूसरी राजकुमारी से भेंट करने जाते समय अपने साथ चार कठपुतलियो लिये जाती है। संत ज्ञानेश्वर, तुकाराम तथा नामदेव ने इन गुडडे–गुड़ियों–कठपुतलियों के खेल को मराठी में 'साईखड़ा' का खेल कहा है। छाया कठपुतलियों का खेल तो बहुत प्राचीन है। कहा जाता है कि महाराष्ट्र के पहले मराठी नाटककार स्व. विष्णुदास भावे भी पहले कठपुतलियों का खेल प्रस्तुत किया करते थे। लेकिन देश में एक सुदृढ़ परंपरा होने के बावजूद इस कला का विकास नहीं हो पाया। एक सृजनात्मक व्यवसाय के रूप में भी इस कला को श्रद्धा के साथ नहीं देखा गया। इसके विपरीत, जापान, रूस, चेकोस्लोवाकिया, अमेरिका, जर्मनी, इटली, स्विट्जरलैंड, इंग्लैंड आदि देशों में विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से इस कला को ऊंचाइयों पर पहुंचाया गया है।

परंपरागत कठपुतलियां

परंपरागत कठपुतलियों के मुख्य रूप से चार प्रकार हैं :—

1. हाथ या हस्त कठपुतली

2. छड़ या शलाका कठपुतली

3.सूत्र या डोर कठपुतली

4. छाया कठपुतली

1. हाथ या हस्त कठपुतली

हमारे देश में केरल राज्य में मुख्यतः हाथ कठपुतलियों का उपयोग होता है। मनोरंजन के साथ—साथ कुछ धार्मिक विधि—विधान हेतु भी कठपुतलियां उपयोग में लाई जाती है। जिस तरह हाथ में दस्ताने चढ़ाए जाते हैं, उसी तरह कथकली की कठपुतलियां हाथ के पंजे में पहन होमकुंड के इर्द—गिर्द बैठा व्यक्ति उन्हें नचाता है। इन्हें पावकुथु या पावकली कहा जाता है। पाव माने कठपुतली और कुथु यानी नाच या खेल। बंगाल में बनी पुतुल नाम से प्रचलित कठपुतलियों के खेल को घुमक्कड़ कठपुतलीकार प्रस्तुत करते है। दो कठपुतलीकार प्रस्तुत करते है। दो कठपुतलियों की चोटियों को इकट्ठे बांधकर और उन्हें कंधे पर डालकर ये कठपुतलीकार एक गांव से दूसरे गांव खेल करते हुए घूमते हैं। उड़ीसा में भी परंपपरागत हाथ/हस्त कठपुतलियों का प्रचलन है। वहां इसे कुधेंही नाचा नाम से संबोधित किया जाता है। कुंधेही यानी कठपुतली। नाचा यानी नाच या खेल/खेला । इस खेल में कृष्ण तथा राधा, बस दो ही कठपुतलियां होती हैं। इन कठपुतलियों को नचाते समय सूत्रधार के परदे के पीछे छुपे रहने की परंपरा नहीं है। महाराष्ट्र के कुडाल के नजदीक बसे पिंगुली गांव में भी रामायण की कथाएं प्रस्तुत करते समय कठपुतलियों का प्रयोग किया जाता है।

2 छड़ या शलाका कठपुतली

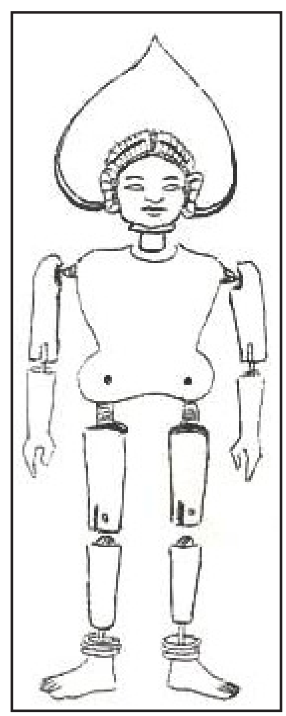

बंगाल में विशेषतः इन कठपुतलीयों का प्रचलन हे। परंपरागत तथा आधुनिक कठपुतलीकार छड़/शलाका कठपुतलीयों का बड़े पैमाने पर उपयोग करते हैं । कई बार इन कठपुतलियों की लंबाई 4 से 5 फुट होती है। कठपुतली के चेहरे से सटी छड़ हाथ में पकड़ कर कठपुतली नचाई जाती है। ऐसी कठपुतलियों को नचाने हेतु कभी—कभी एक से अधिक सूत्रधार जरूरी होते हैं । कमर के इर्द—गिर्द कपड़ा/पटटा लपेटा जाता है; उसमें कठपुतली की छड़ फंसाकर कठपुतलीकार छड़ के जरिए कठपुतली के हाथों को गति देता है। बांग्ला भाषा में इसे पुतुलनाच या पुतुलखेला कहा जाता हैं। उड़ीसा के छड़/शलाका कठपुतली खेल को काठी कुंधेही कहा जाता है। ये छड़/शलाका कठपुतलियो 12 से 18 इंच लंबी होती हैं। बंगाल के पुतुलनाच में जहां सूत्रधार खड़ा रहकर सूत्र संचालन करता है, वहीं काठी कुंधेही में बैठकर।

कर्नाटक में छड़ या तार तथा डोर इन दोनों की मदद से कठपुतली का खेल प्रस्तुत करने का एक तरीका है । इस तरीके में सूत्र कठपुतली की तरह ऊपर से कठपुतली नचाई जाती है। सूत्रधार के सिर पर एक रिंग होती हे। इस रिंग से कठपुतली के दो कानों से बंधी दो डोर जुड़ होती है। सूत्रधार जैसे—जैसे अपनी गर्दन हिलाता है, तदनुसार कठपुतली की गर्दन की भी हलचल होने लगती है। कठपुतली के दोनों

हाथों से दो मोटे तार या छड़ बंधी होती है। इन्हें सूत्रधार अपने हाथ में पकड़े रखकर कठपुतली के हाथों को गति देता है। ये कठपुतलियां बहुत वजनदार होती हैं। इनके पैर नहीं होते। महाराष्ट्र में गणेशोत्सव के दौरान जिस गौरी की स्थापना की जाती है, उसी गौरी के समान इन कठपुतलियों का रंग–रूप होता है। इन कठपुतलियों का नचाते समय स्वयं सूत्रधार अपने पैरों में घुंघरू बांध नाचता रहता है। इन्हें गोम्बे आटा कहते हैं । गौम्बे को मतलब कठपुतली तथा आटा यानी नाच या खेल/खेला।

3 सूत्र या डोर कठपुतली

डोर के सहारे नचाई जाने वाली राजस्थानी कठपुतलियां विश्व–प्रसिद्ध हैं। कई बार इन कठपुतलियों के पैर नहीं होते । ये कठपुतलियां हाथ की उंगलियों पर लिपटी डोर के माध्यम से ऊपर से नचाई जाती है। कठपुतलियों के चेहरे लकड़ी से बने होते हैं, जबकि शेष शरीर कपड़े से बना होता है। कमर के नीचे विस्तृत घेरे का लंहगा पहनाया जाता है। मुंह से निकली संगीतमय ध्वनि तथा ढोलक की ताल पर ये कठपुतलियां नाचती है। अमर सिंह राठौड़, पृथ्वीराज चौहान आदि ऐतिहासिक कथाओं को आधार बनाकर कठपुतलियों का खेल प्रस्तुत किया जाता है।

कर्नाटक के कुंदापुर निवासी कोग्गा कामथ ऐसे एकमात्र कठपुतलीकार हैं जो सूत्र कठपुतलियों के माध्यम से यक्षगान प्रस्तुत करते हैं । उनकी सूत्र/डोर कठपुतलियो लकड़ी से बनी होती हैं। उनके पैर भी होते हैं। ठेठ यक्षगान के पात्रों की तरह उनकी वेशभूषा, साज–श्रृंगार तथा मंच–सज्जा होती है। डेढ़ से दो फुट ऊंचाई की इन कठपुतलियों के कम से कम 4 और अधिक से अधिक 8–10 डोर बंधे होते हैं। इनकी हलचल भी यक्षगान की शैली में तालबद्ध होती है।

महाराष्ट्र के पिंगुली गांव में कठपुतलियों का खेल प्रस्तुत करने वाला एक परंरागत दल है। यह दल रामायण–महाभारत की कथाओं को प्रस्तुत करता है। इनके पास मौजूद सूत्र/डोर कठपुतलियो राजस्थानी कठपुतलियों से काफी मिलती–जुलती हैं।

4 छाया कठपुतली

भारत की कठपुतलियों का यह प्राचीन प्रकार है। इन कठपुतलियों को चमड़े की कठपुतली भी कहा जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि इन्हें बकरी या हिरन की चमड़ी से बनाया जाता है। दक्षिण भारत तथा उड़ीसा में छाया कठपुतली का खेल प्रस्तुत करने वाले परंपरागत कठपुतलिकार अभी भी मौजूद हैं।

आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र केरल तथा उड़ीसा में इन कठपुतलियों के निर्माण का तरीका कमोबेश समान ही है। आंध्र प्रदेश की कठपुतलियो चार से पांच फुट लंबी होती हैं, वहीं महाराष्ट्र की कठपुतलियों नौ इंच लंबी। इन्हें बनाने हेतु बकरी की गीली खाल से बाल साफ किए जाते हैं और उस खाल को अच्छी तरह खींचकर सुखाया जाता है। उस पर जरूरत के मुताबिक विभिन्न आकार की रूपरेखा खींच ली जाती है। कठपुतली की हलचल को ध्यान में रखते हुए शरीर के जोड़ों को अलग से काट लिया जाता है। उन्हें एक–दूसरे के साथ डोर से बांध दिया जाता है। उनमें छेद कर उन्हें गहनों, कपड़ों आदि से सजाया जाता है। फिर उन्हें सब्जियों, वनस्पतियों से निकले प्राकृतिक रंगों से रंग दिया जाता है। लेकिन उड़ीसा तथा केरल में कठपुतलियों को रंगा नहीं जाता। इन कठपुतलियों को सफेद परदे के पीछे नचाया जाता है। पीछे से आ रहे प्रकाश के कारण इन कठपुतलियों की छाया परदे पर दिखाई

देती है। दर्शक साक्षात् कठपुतलियां नहीं, बल्कि सफेद परदे पर उनकी छाया देखते हैं, इसीलिए इन्हें छाया कठपुतलियां कहा जाता है।

कर्नाटक, उड़ीसा, महाराष्ट्र आदि राज्यों की कठपुतलियों में बहुत हलचल या गति नहीं देखी जाती, बल्कि एक संपूर्ण कठपुतली मानो एक चित्र के समान होती है। इस चित्र के बीचोंबीच बेंत फंसा दी जाती है। इसी बेंत या लकड़ी के सहारे संपूर्ण चित्र को हिलाया–डुलाया जाता है।

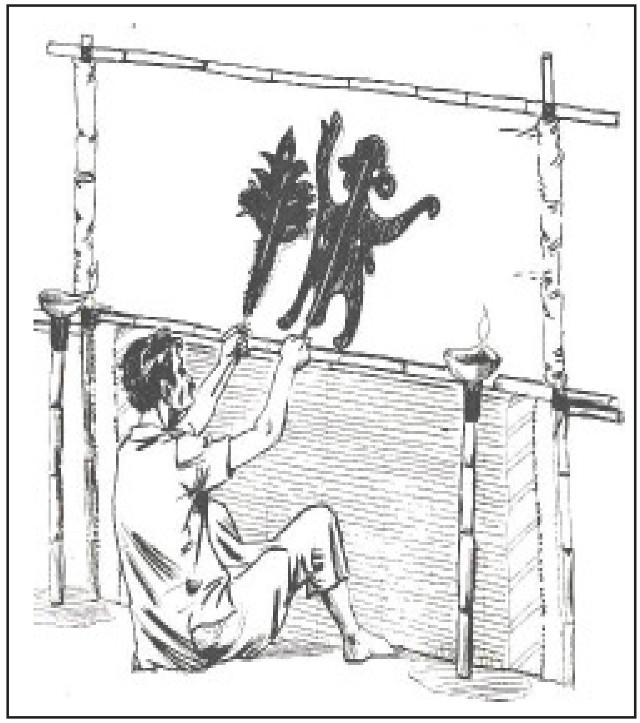

आंध्र प्रदेश की कठपुतलियों में पर्याप्त मात्रा में हलचल दिखाई देती है। हलचल हेतु कठपुतली के मध्य भाग में एक, प्रत्येक हाथों के पंजों में एक–एक, तो कभी–कभी गर्दन में एक छड़ फंसाई जाती है। कठपुतली का यह खेल रामायण–महाभारत के कथानकों को आधार बनाकर खेला जाता है। इस खेल में नाच–गानों का भी समावेश होता है। वाद्य यंत्रों का उपयोग होता है।संवाद शैली काव्यात्मक होती है। महाराष्ट्र में इन्हें चमड़े की कठपुतलियां तो उड़ीसा में रावणछाया, कर्नाटक में थोगालु गोम्बे आटा, आंध्र प्रदेश में थोलु बोम्मल आटा कहा जाता है। थोलु यानी चमड़ा। बोम्मल आटा यानी कठपुतली का नाच।

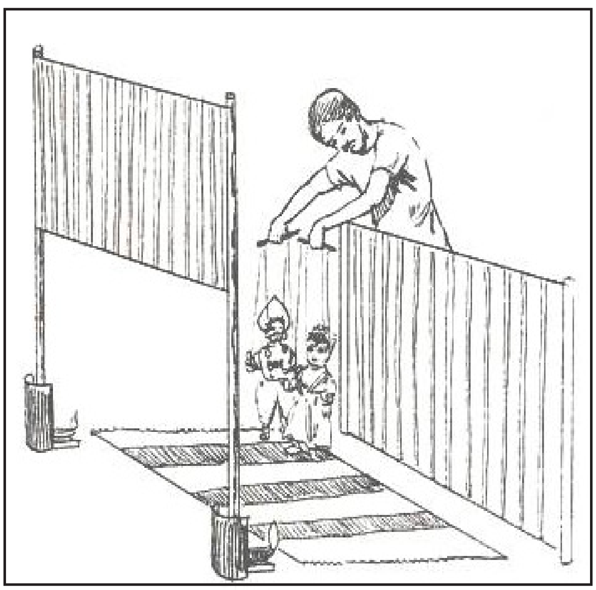

इन चार परंपरागत प्रकारों के अलावा कठपुतली का मेरी समझ में एक और महत्वपूर्ण प्रकार है।, यह है सृजनात्मक कठपुतली ;बतमंजपअम चनचचमजेद्ध। सृजनात्मक कोशिशों से निर्मित कठपुतली किसी भी वस्तु या माध्यम के सहारे बनाई जा सकती है। ऐसी कठपुतली को किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता । सृजनात्मक कठपुतली के नाच हेतु ऊपर दिए गए किसी भी एक तंत्र का या इकटठे दो–तीन तंत्रों का; अथवा इन चारों में से अलग किसी भिन्न तंत्र का सहारा लिया जाता है। इसमें अस्तित्वप्राप्त किसी जड़ वस्तु को विशेष हलचल प्रदान कर जीवित व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

आज दुनिया में कठपुतली की संकल्पना इतनी व्यापक रूप धारण कर चुकी है कि किसी भी क्रिया–कलाप, हलचल को दर्शाने वाली वस्तु को 'पपेट' मान लिया जाता है। इनमें छुरी–कैंची–पिन से लेकर छाते, जूते, फलक, दरांती, बिजली का खंभा आदि कई वस्तुएं शामिल हैं। इन्हें क्रिया–कलापों के जरिए जीवंत बनाना केवल सूत्रधार की कुशलता का परिचायक होगा। ऐसा भी नहीं कि सूत्रधार को परंपरानुसार परदे के पीछे ही छिपा रहना चाहिए। वह बाकायदा अपनी कठपुतलियों के साथ दर्शकों के सामने बना रह सकता है। वस्तुतः गतिमान कठपुतलियों में ही इतना आकर्षण होता है कि सूत्रधार की ओर दर्शकों का ध्यान ही नहीं जाता ।

मुझे लगता है, आज के युग में इन कठपुतलियों का उपयोग अधिक से अधिक होना चाहिए। किसी समय

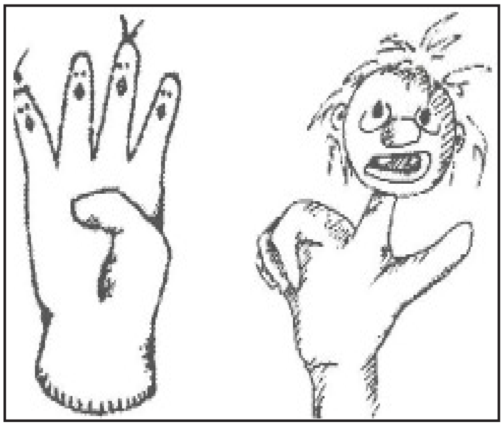

में इस कला को तथा कठपुतलीकारों को समाज में विशिष्ट स्थान और सम्मान प्राप्त था। लेकिन आज यह कला मानो मर रही है। कारण यह कि यह कला जनसाधरण के बीच पहुंच ही नही पाई। इस कला का तंत्र, प्रस्तुतीकरण खास परिवारों तक ही सीमित रहा । मौखिक परंपरा के जरिए इन प्रस्तुतकर्ताओं को जितना कुछ समझ में आया, बस यही रामायण–महाभारत के कथानकों में कोई बदलाव नहीं आया। परिणामस्वरूप आज यह कला खत्म होने के कगार पर है। अतः परंपरागत तंत्र एवं आधुनिक सोच तथा माध्यम को मिलाकर कठपुतलियों का नाटक प्रस्तुत करना चाहिए। प्राचीन काल में जादू–टोना, चमत्कार आदि के लिए गूढ़ विद्या के रूप में इस तंत्र का उपयोग किया जाता था। शायद इस कारण भी यह कला औरों को न सिखाई जाती हो, इसका प्रचार–प्रसार न किया गया हो। लेकिन आज के कंप्यूटर युग में गूढ़ विद्या का कोई मतलब नहीं है। बल्कि इस कला का विज्ञापन, सिनेमा, टेलीविजन, शिक्षा जगत, समाज–सुधार आदि विविध
ा

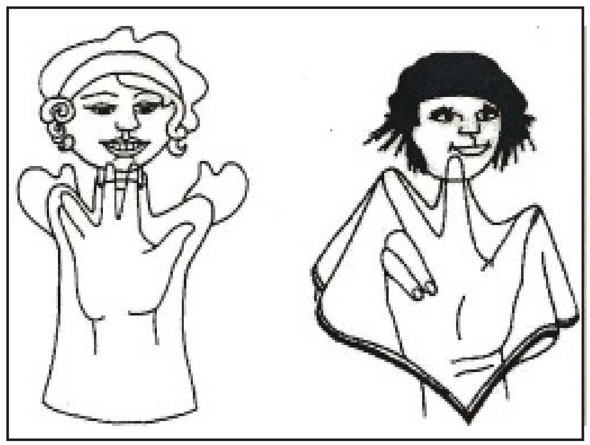

माध्यमों, विधाओं, क्षेत्रों में उपयोग होने लगा है। कठपुतली का नाच केवल बचकानापन या बच्चों का खेल है इस विचार को त्याग गंभीर समस्याओं को लेकर समाज में जागरूकता फैलाने हेतु अब कठपुतलियों का उपयोग हो रहा है। एड्स संबंधी, गोद लेने–देने संबंधी जागरूकता, पर्यावरण, प्राथमिक शिक्षा तथा बच्चों के यौग शोषण जैसे गंभीर सामाजिक समस्याओं को उजागर करने हेतु मैनें स्वयं हाथ कठपुतली, छड़ कठपुतली तथा छाया कठपुतलियों का उपयोग किया है। ये प्रयास अत्यंत सफल भी साबित हुए हैं।

अध्यापन के क्षेत्र में कठपुतली का उपयोग

शिक्षा पद्धति में समय–समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। प्राचीन समय में शिक्षा–पद्धति जहां बेहद सहज थी, वहीं समय बीतने के साथ वह औपचारिक होती चली गई। बाद में, एक अलग संदर्भ में वह सहज और औपचारिक दोनों हो गई। और अब औपचारिक शिक्षा, अपने भिन्न ही रूप में, यानी अनौपचारिक तरीके से देने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। शिक्षा संस्थान, शिक्षा प्रबंधन, शिक्षा का उद्द्वेश्य, शिक्षा के साधन तथा शिक्षकों का स्थान एवं उनकी अपेक्षाएं आदि पहलुओं में भी परिवर्तन आ रहा है। आज–शिक्षा का महत्व मानव के सर्वागीण विकास के दृष्टिकोण से स्वीकारा जा रहा है। आज उम्मीद की जाती है कि शिक्षा मनुष्य की स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, बंधुत्व, समानता,

धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकात्मकता तथा विश्व–नागरिकता आदि विशाल उद्द्वेश्यों की प्राप्ति का

साधन बने। इसके पीछे कोशिश यही है कि शिक्षा जगत से निकला छात्र अपने आपको जीवन की पटरी पर ठीक से बिठा पाए। संक्षेप में, शिक्षाविदों की यह दृढ़ मान्यता है कि शिक्षा 'जीवनदायी' हो, ताकि वह 'आनंददायी' भी सिद्ध हो सके। नए शिक्षा कार्यक्रमों के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा छात्र–केंद्रित, आनंददायक, लचीली, उद्यमपरक तथा सृजनशील हो यही मान्यता है। अतः शिक्षा–कार्यगतिशील, प्रभावशाली, अर्थपूर्ण तथा मनोरंजक हो सके, इस दृष्टिकोण से दैनंदिन

अध्यापन कार्य में विविध साधनों का उपयोग होने लगा है। इन साधनों में कठपुतली को भी एक

साधन मानकर उसे समाविष्ट करना जरूरी है।

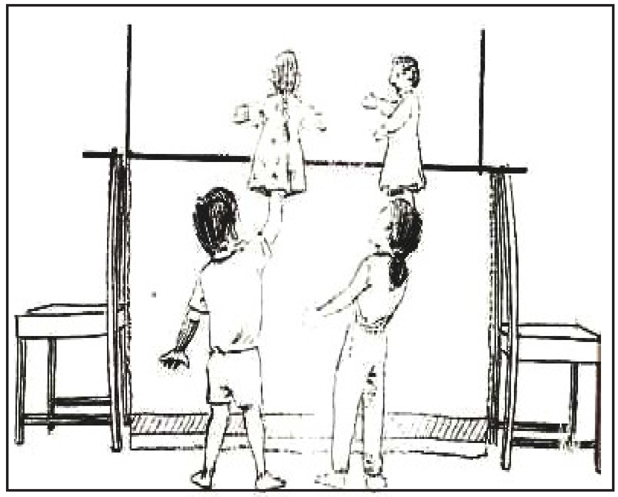

प्राथमिक पाठशाला में पढ़ने वाले बच्चों की जेब में अक्सर कंचे, मणि, कंकड–पत्थर, रंगीन कागज, मोरपंख, पत्तियां, कपड़ों के टुकड़े, खाली डिबिया वगैरह चीजें रखी होती हैं। इन चीजों का उपयोग कठपुतली बनाने में हो सकता है। हम केवल पुस्तकों के माध्यम से शिक्षा नहीं पा रहे हैं, ऐसी सोच बच्चों की भी बनती जाती है। अतः शिक्षक तथा छात्रों के बीच समरसता का निर्माण होता है। आनंददायक, सृजनाशील तथा छत्र–केंद्रित शिक्षा में इनका होना जरूरी है। निष्प्राण, किताबी, लीक से बंधी पढ़ाई की बजाय शिक्षा का यह स्वरूप अधिक चेतनामय, सृजनात्मक तथा आनंददायी सिद्ध होता है।

कठपुतली खेल की मूल भावना मनोरंजन करना है। बस, इसी भावना को ध्यान में रखते हुए छात्रों को पढ़ाना होगा। शिक्षा का उद्द्वेश्य अपेक्षित परिवर्तन लाना है।

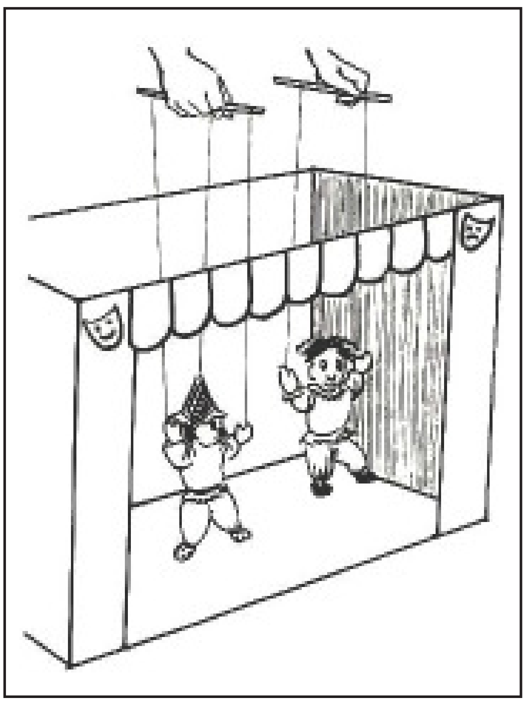

वास्तव में, छात्रावस्था में छात्रों के जीवन–अनुभव में सही प्रतिमाएं उभरती ही होंगी, ऐसा जरूरी नहीं है। किंतु कठपुतली का उपयोग अनुभव जगत को समृद्ध करने का एक प्रभावशाली तरीका है। इस तरीके से भाषा जीवंत हो जाती है। कठपुतली के खेल में सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना तथा स्वयं करके दिखाना जैसी भाषिक क्रियाओं का समावेश होता है। अतः छात्रों को किताबी शिक्षा के अलावा स्वयं के कार्यानुभवों से भी बहुत कुछ सीखने को मिलता है। छात्रों के व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास में भी मदद मिलती है। अध्ययन तथा अध्यापन के अलग–अलग तरीके हैं। इनमें विविध क्रियाओ–प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है; मसलन, शोध, सोचना, जांचना, निरीक्षण, स्पर्श कर जांचना, अनुमान लगाना, तुलना करना, अपनी पसंद दर्शाना, अपनी नापसंदगी का कारण स्पष्ट करना, एक–दूसरे से विचार–विमर्श, पड़ोसी से सलाह–मशविरा, देखकर बात समझना, अपना काम स्वंय करना,काम न होने की स्थिति में उस दिशा में कोशिश करना आदि। कठपुतली का खेल इसी सिद्धांत पर आधारित है। मेरी बात और स्पष्ट हो पाए, इसलिए हम कठपुतली के खेल को सीढ़ी–दर–सीढ़ी समझेंगे।

कठपुतली के खेल में पहला कदम कठपुतली बनाना होता है। कुछ नया–नया बनाते रहना बच्चों को स्वभावतः अच्छा लगता है। रेत का महल, कागज की नाव, चमकीली पन्नी की गुड़िया, रूमाल से बना चूहा आदि वस्तुओं के माध्यम से बच्चों की कल्पनाशक्ति का विकास होता है। ऐसी स्थिति में हरकतें करने वाली और बोलने वाली कठपुतलियों की रचना करने में उन्हें कितना आनंद मिलेगा! कठपुतलियां बनाने के कई तरीके हैं। लेकिन प्राथमिक पाठशाला के बच्चों को आसान तथा सस्ती कठपुतलियां बनाने की कला सिखाना सही होगा। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर बच्चों द्वारा जेब में इकटठा की गई निरर्थक चीजों का उपयोग किया जा सकता है। कठपुतलियां बनाते समय बच्चों से जाने–अनजाने कुछ नया ही बन जाता है। उदाहरण के तौर पर, बच्चें कुत्ता बनाना चाहते

हैं, लेकिन बीच ही में विचार बदल जाने के कारण या फिर अचानक ही कुत्ते की जगह बिल्ली कब बन जाती है, पता ही नहीं चलता। इसी तरह बनानी होती है राजकुमारी और बन जाती है। डायन से भी बदतर प्रतिमा। बहरहाल, मनपसंद कठपुतली बनाने की कला धीरे–धीरे आ जाती है। इस सच्चाई को ध्यान में रखते हुए कठपुतली खेल की पहली सीढ़ी के रूप में 'लिखित' कुछ न रखा जाए, कठपुतली बनाने पर ही जोर दिया जाए। कठपुतली बनाने में सभी बच्चों की दिलचस्पी नहीं होती । अतः बच्चों को छोटे–छोटे दलो ं में बांट दिया जाए और किसी एक दल को कटाई का, किसी को चिपकाने का तो किसी को रंगने का काम सौंप दिया जाए। ऐसा करने से सभी बच्चों निर्माण–प्रक्रिया में व्यस्त हो जाते हैं।

कठपुतली के खेल का दूसरा कदम कथानक वाला होता है। कठपुतलियां मानो पैदाइशी कलाकार होती हैं। उन्हें रंगमंच पर अपनी कला प्रस्तुत करने का अवसर सूत्रधार को, यानी हममें से किसी को देना ही होता है। इस हेतु किताब में से किसी अध्याय, कविता या प्रसंग–विशेष को चुनकर हमें उसे संवाद की शैली में ढालना होगा। अर्थात नाट्य रूपातंरण करना होगा। इस प्रकार की कोशिशों से बच्चों का 'संवाद–लेखन' से परिचय होता है। बच्चों को दलों में बांटकर उन्हें उपलब्ध कठपुतलियों के सहारे एकाध नाटिका अथवा संवादपरक प्रस्तुति तैयार करने के लिए कहा जाए। नाटिका के पात्रों से अधिक कठपुतलियां हमारे पास उपलब्ध हों तो अतिरिक्त कठपुतलियों को संचालक या कथाकार की भूमिका दी जा सकती है। इस अभ्यास के दौरान बच्चे बड़े उत्साह से अपनी नाट्य–प्रतिभा दिखाते हैं। कभी–कभी बच्चों को शिक्षकों द्वारा मार्गदर्शन देना जरूरी हो जाता है। इसके तहत नायक तथा नायिका के रूप में कठपुतलियों का चयन करना, फिर उतार–चढ़ावों वाली किसी घटना को तय करना, अतिरिक्त कठपुतलियों में से कौन–सी कठपुतली मददगार के रूप में और कौन–सी कठपुतली रोड़े अटकाने वाली भूमिका करेगी, यह निश्चित करना और अंत में छोटे–छोटे प्रसंगों के माध्यम से नाटिका तैयार करना आदि बातों को अंजाम देना होता है।

कठपुतली खेल की तीसरी सीढ़ी मंच का निर्माण करना होता है। एक छोटे–से कमरे में तत्काल तथा अस्थायी मंच तैयार करना हो, तो अनेक तरीके अपनाए जा सकते हैं :

1. कक्षा में उपलब्ध मेज को तीन ओर से कपड़े या कागज के सहारे ढंक दें और इसके पीछे छिपकर कठपुतलियों का संचालन करें।

2. दो कुर्सियों को एक निश्चित दूरी पर रखा जाए। कुर्सियों का पीठवाला हिस्सा एक–दूसरे की ओर हो। कुर्सियों पर एक डंडा रखें । इस पर चादर बिछाएं। चादर के पीछे छिपकर कठपुतलियों का संचालन करें।

3. मंच को वास्तविक रूप देने हेतु टीवी के डिब्बे या उसी आकार के किसी डिब्बे का उपयोग करना होगा। डिब्बे का निचला तथा ऊपरी हिस्सा काट दें। चार बाजुओं में से किसी एक बाजू का केवल बीच का हिस्सा हटा दें। इस तरह बने मंच को किसी ऊंची मेज पर रखें। अब बीच के हिस्से में कठपुतलियां नचाई जा सकती हैं।

उपर्युक्त मंच का निर्माण करते समय बच्चे भी इस काम में हिस्सा ले सकते हैं। यहां नेपथ्य के बारे में भी विचार किया जा सकता है। चित्रकला में माहिर बच्चों से तरह–तरह के चित्र बनवाए जा सकते हैं। इन चित्रों का उपयोग प्रसंगानुसार एक माहौल बनाने तथा मंच के पीछे टांगे जाने वाले परदे को चित्रित करने के लिए भी किया जा सकता है। जरूरी हो तो कथा को आगे बढ़ाने के लिए भी इन चित्रों का उपयोग हो सकता है।

कठपुतली के खेल का आखिरी, किंतु महत्वपूर्ण हिस्सा 'प्रस्तुतीकरण' होता है। प्रस्तुतीकरण में कठपुतली नचाना, संवाद अदायगी, संगीत, उद्घोषणा आदि का समावेश होता है। कठपुतली को नचाने के लिए हरेक को अपनी कठपुतली हाथ में पकड़नी होगी और उसे आवाज के माध्यम से बोलता हुआ पात्र बनाना होगा। खुद को मंच के पीछे छिपाकर कठपुतलियों की हरकतों का संचालन करना होगा। बच्चों के लिए यह आसान है, क्योंकि निरीक्षण तथा अनुकरण ये दो काम उक्त क्रिया के दौरान होते रहते हैं। बच्चों में निरीक्षण करते रहने की एक आदत होती है। दादा कैसे खांसते हैं, दादी कैसे चलती हैं, बंदर कैसे छलांग लगाते हैं आदि क्रियाओं की नकल बच्चा अपनी एकाध साल की उम्र से ही करने लगता है। अतः हाथ की कठपुतलियों को कथानक के चरित्रों के अनुसार नचाना

उनके लिए मुश्किल काम नहीं है । थोड़े समय के अभ्यास से ही वे इन चीजों को आसानी से सीख लेते हैं। बहरहाल, कभी–कभार कोई अड़चन भी पैदा हो सकती है। उदाहरण के लिए, बच्चे कठपुतली को तो अच्छी तरह नचा लेते हैं लेकिन वे सही आवाज नहीं दे पाते, या फिर आवाज दे पाते हैं लेकिन कठपुतलियों का सही संचालन नहीं कर पाते। इस समस्या से बचने के लिए एक कठपुतली नचाने वाला और दूसरा संवाद बोलने वाला, ऐसे दो दल बना लिए जाएं। इससे बच्चों को जहां अधिक से अधिक अवसर मिलेगा, वहीं दोनों दलों में आपसी तालमेल भी बना रहेगा। आपसी तालमेल व्यक्तित्व निर्माण में मदद करता है।

कठपुतली का खेल एक सामूहिक कला है। इसमें आपसी तालमेल होना बहुत जरूरी है। जब सब लोग इकटठा काम करते है, तो वहां व्यक्तिगत अहं, स्वार्थ, हठ जैसी संकुचित प्रव त्तियों को त्याग देना पड़ता है। इसके विपरीत, दूसरों को मदद पहुंचाना, किसी की कमजोरी को ठीक करना, एक–दूसरे के मेलजोल से उत्तम कृति का निर्माण करना जैसी क्रियाएं मानवीय प्रवृत्तियों को महत्व देती हैं। व्यक्तित्व का विकास इन्हीं छोटे–बड़े गुणों से संभव होता है। मनुष्य के अपने अनुभव भी इन्हीं छोटी–छोटी बातों के माध्यम से समृद्ध होते हैं। इन्हीं प्रसंगों के बहाने छात्रों का परिचय व्यक्तित्व के विकास के लिए जरूरी मानवीय क्षमता तथा कुशलता से होता है। तरह–तरह की कृतियों का निर्माण, नई–नई चुनौतियों से सामना, सही विकल्पों का चुनाव, इन विकल्पों से उत्पन्न होने वाली समस्याएं और उनका निराकरणकृकृ यही तो सांसारिक जीवन का स्वरूप है। ऐसे जीवन को जीते समय हमें परिश्रम, कभी–कभार की निराशाओं, साथ ही निरीक्षण तथा विवेक के माध्यम से किसी तत्व का आविष्कार, उचित–अनुचित को जानने संबंध ी निर्णय और इस प्रक्रिया से मिलने वाले आनंद आदि–आदि पड़ावों से गुजरना होता है। कठपुतलियों के खेल के जरिए बच्चों का इन अनुभूतियों से सामना होता है, भले ही छोटे पैमाने पर। बुद्धि, कौशल तथा मूल्य आदि गुण मानव व्यक्तित्व के प्रमुख तत्व है। भाषा के माध्यम से संस्कार गढ़े जाते हैं। मनुष्य के भीतर मानवीयता पैदा की जाती है। यह तभी संभव है, जब भाषा का प्रयोग हो। हाथ में कठपुतली के आते ही बच्चे बोलने लगते हैं। कठपुतली को एक अलग व्यक्ति मानकर बच्चे बेझिझक बोलने लगते हैं। इस कारण बच्चों का शब्द–ज्ञान विकसित होता है। उन्हें सही उच्चारणों का पता चलता है। शब्दों का वनज तथा वाक्यों की बनावट संबंधी ज्ञान होता है। कई बार पढ़ाई का माध्यम एक भाषा होती है, जबकि उस विद्यालय में अलग–अलग भाषाएं बोलने वाले छात्र भी पढ़ते हैं। ऐसे बच्चों को नई भाषा जानने–समझने में दिक्कत होती है। ऐसी स्थिति में ये बच्चे विद्यालय आने या पढ़ने से ही कतराते है। इस समस्या से उबरने के लिए इन बच्चों को कठपुतली की मदद से भाषा सिखाई जा सकती है और शिक्षा में उनकी रूचि को भी बनाए रखा जा सकता है।

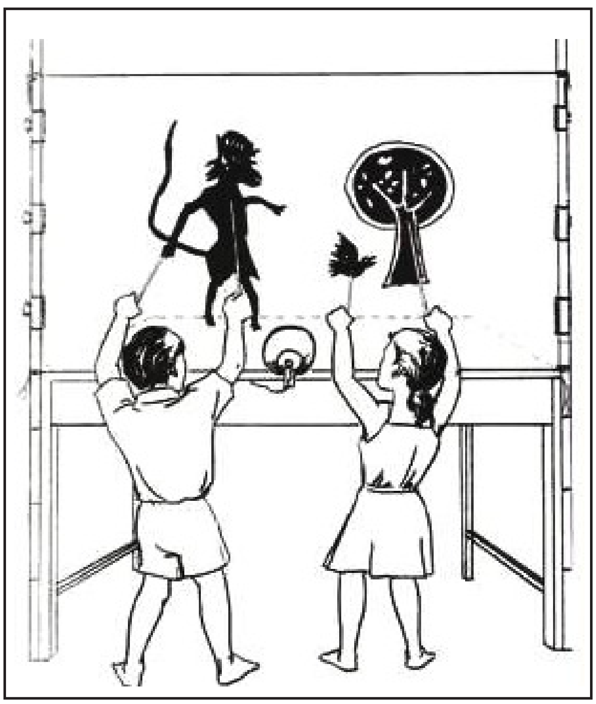

कठपुतली काल–विशेष तक सीमित नहीं होती। भूतकाल, वर्तमान तथा भविष्य से संबंधित किसी भी कथानक को कठपुतली के मध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। इतिहास की शिक्षा देते समय शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप या अन्य किसी भी इतिहास–पुरूष के इर्द–गिर्द बुनी कहानी कठपुतली खेल के जरिए प्रस्तुत की जा सकती है। इस खेल में अमूर्त संकल्पनाएं मूर्त की जा सकती हैं। हवा, ऊष्णता, विटामिन, एड्स रूपी राक्षस, तंबाकू रूपी दानव आदि–आदि समस्याओं या रूपों को कठपुतली के जरिए साकार किया जा सकता है। विज्ञान विषय सिखाते समय भी कठपुतलियों की मदद ली जा सकती है।

कठपुतली के सहारे नागरिकशास्त्र की पढ़ाई भी बच्चों को आसान लगती है। उपदेश देने की बजाय जीवन की अच्छाइयों–बुराईयों को कठपुतली खेल के जरिए समझाया जाए तो बच्चे जीवन के सही–गलत पक्ष को समझ लेते हैं।

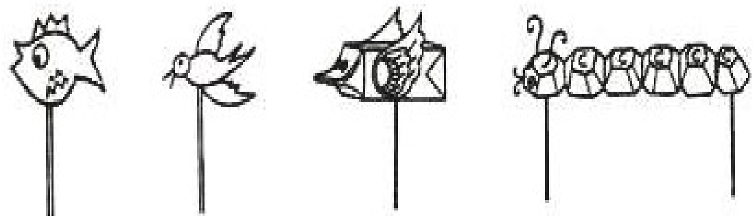

प्राथमिक विद्यालय के बच्चों को अंकों का परिचय देने में तथा आसान गणित, जोड़ना, घटाना, गुणा करना, भाग करना सिखाते समय भी कठपुतली मददगार साबित होती है। कहा जाता है कि बादशाह अकबर को बचपन में कबूतर बहुत भाते थे। अतः शिक्षक अकबर को गणित सिखाते समय कबूतरों की मदद लिया करते थे। इसी उदाहरण को ध्यान में रखते हुए कठपुतली के सहारे गणित जैसे विषय को भी दिलचस्प बनाया जा सकता है।

सामाजिक जीवन और उसकी समस्याओं का परिचय कराने के लिए भी कठपुतलियों को खेल रचा जा सकता है। मान लिया जाए कि शहर में रहने वाली माता–पिता सुबह ही दफ्तर चले गए हैं या गांव में रहने वाले माता–पिता खेतों पर मेहनत करने हेतु निकल गए हैं, ऐसी स्थिति में बड़े बच्चों को अपने छोटे भाई–बहनों की देखभाल करनी होती है। बड़े बच्चे भी लगभग सात–आठ साल के ही होते हैं। देखभाल कर रही है। इसी समय लड़की की सहेली वहां आकर उसे खेलने के लिए बाहर चलने हेतु उकसाती है। भाई की उपेक्षा करते हुए लड़की अपनी सहेली के साथ खेलने निकल पड़ती है। घर में छोटा भाई मिट्टी खाने लगता है, रेंगते–रेंगते गरम बर्तन की ओर बढ़ता है और अपना हाथ जला बैठता है आदि–आदि। दूसरे कथानक के अंतर्गत वही लड़की साफ इंकार कर देती है कि भाई को अकेला छोड़कर वह खेलने नहीं जाएगी। सेहली खाने की चीज दिखाकर लालच देती है। लड़की दुविधा में फंस जाती है। वह दिमाग लड़ाती है और भाई को भी साथ लेकर खेलने निकल जाती है। इस तरह खेलना और देखभाल दोनों काम एक साथ हो सकते हैं । इस प्रकार कथानक प्रस्तुत कर बच्चों का जहां मनोरंजन किया जा सकता है, वहीं उन्हें सीख भी दी जा सकती है। समस्या खड़ी होने पर उसे कैसे सुलझाया जाए, इसका ज्ञान भी बच्चों को होता है।

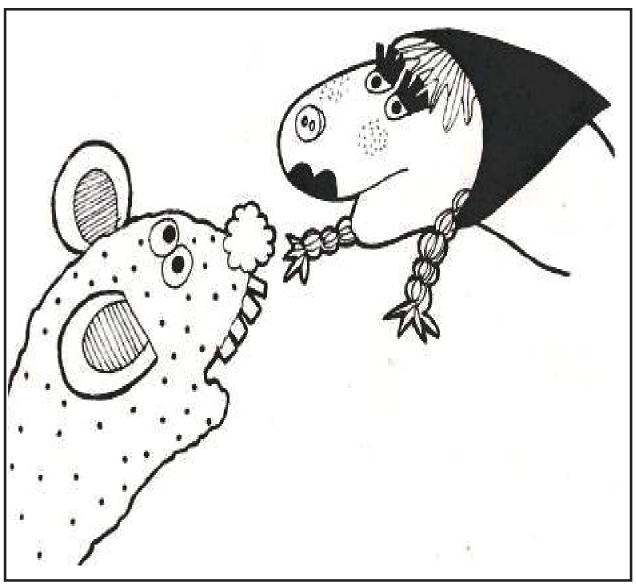

कठपुतली के खेल के लिए तो मानो सभी विषय अनुकूल है; उदाहरण के लिए, प्राणी जगत, मानव संबंधी विभिन्न जानकारियां, खेत–खलिहानों में मेहनत करने वाले जानवर, किसान द्वारा इन जानवरों की कि जाने वाली परवरिश, जानवरों द्वारा की जाने वाली किसानों की सेवा, परिवार–विशेष का परिचय, परिवार के सदस्यों के बीच आपसी संबंधा, उनके आपसी व्यवहार के तौर–तरीके, भिन्न–भिन्न व्यवसाय, इन व्यवसायों से जुड़े लोग आदि–आदि।

अब तक गिनाए गए विषयों को प्रस्तुत करने के लिए चित्र, स्थिर चित्र पट्टिका, सिनेमा, टेलीविजन आदि माध्यमों का भी उपयोग हो सकता है। इस सच्चाई को भी समझना होगा कि चित्र या तस्वीर जहां निर्जीव होते हैं, वहीं कठपुतली सजीव होती है, कम से कम बच्चों के मामले में। सिनेमा की तस्वीरें भले ही जानदार होती हों, लेकिन उन्हें छुआ तो नहीं आजा सकता। बच्चों को चीजों को छूकर देखने, उनका स्पर्श अनुभव करने में कुछ अलग ही आनंद आता है। मानो स्पर्श करके ही वे चीजों की वास्तविकता को समझना चाहते हों। बच्चे कठपुतलियों को छूकर

देख–परख सकते हैं। यह भी सच्चाई है कि अन्य दृश्य–श्रव्य माध्यमों में तकनीकी तामझाम की मात्रा अधिक होती है, जबकि कठपुतली के खेल में अपेक्षाकृत सादगी होती है।

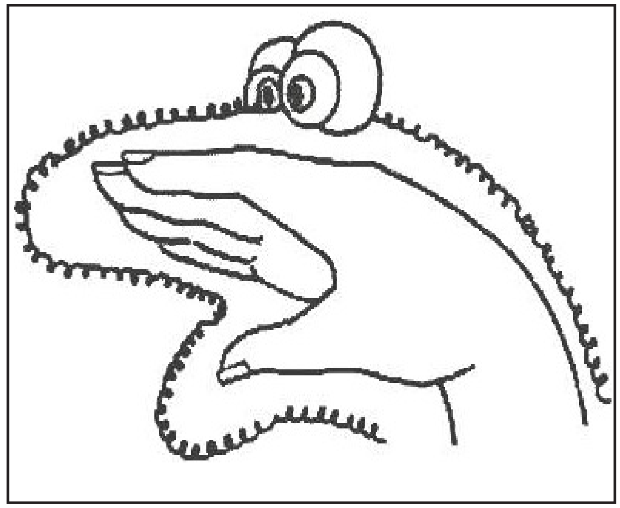

नियमित अंतराल से, एक प्रयास के रूप में कठपुतली का खेल प्रस्तुत किया जाए तो शिक्षा को छात्र–केंद्रित बनाया जा सकता है। छात्रों में उम्मीदें जगेंगी और वे अपने भीतर की कला तथा प्रतिभा को उजागर करने की कोशिश करेंगे।

हर चीज के दो पक्ष होते हैं, अच्छा तथा बुरा। कठपुतली भी अपवाद नहीं है। शिक्षकों को शुरू में ही तय कर लेना होगा कि कठपुतली का उपयोग कहां किया जाए । अध्याय की शुरूआत यानी प्रस्तावना के समय, विषय प्रतिपादन के समय, पाठ दोहराते समय या किसी और बिंदु पर। शिक्षा के लिए कठपुतली आसान साधन है। अतः इसका बार–बार उपयोग भी सही नहीं होगा। क्योंकि बार–बार के प्रयोग से मतिभ्रम होने की संभावना बनी रहती है। कोई नई मनपसंद चीज मिल जाने पर व्यक्ति के उसी में खो जाने की संभावना बनी रहती है। अतः व्यक्ति अपने मूल उद्वेश्य से भटक सकता है। इन सारी बातों को ध्यान में रखना होगा और इस तथ्य को भी कि आखिरकार कठपुतली एक साधन है, साध्य नहीं ।

कठपुतली का खेल प्रस्तुत करते समय बरती जाने वाली सावधानियां

1. कठपुलियां सीधी, सरल और आसान बनाई जाएं । एक बैठक में एक कठपुतली बन पाए, यही सरलता का मानदंड होगा। तभी बनाने वाले को आनंद आएगा। कठपुतली बनाने में, संभव हो तो पुरानी और इस्तेमाल में न आने वाली चीजों का उपयोग करें। पुरानी चीजों से नई चीज बनाने में एक अलग प्रकार का आनंद मिलता है। कठपुतली बनाते समय अतिशय या अतिरेक का सहारा लिया जाए, वह मानव की शब्दशः नकल न हो। छोटी–छोटी बातें तथा अनावश्यक विशेषताएं टालें। आंखे बड़ी हों। कठपुतली के रंग खड़े या उभार वाले हों। कठपुतली आसानी से हिलाई–डुलाई जा सके, ऐसी जरूरी हो। तभी उसे कठपुतली कहा जाएगा, वरना वह शिल्प–कृति बन जाएगी।

2. कठपुतलियां बन जाने के बाद कथानक चुनें। कथानक के चरित्रो–पात्रों के अनुरूप आपके पास कठपुतलियां उपलब्ध न हों, तो कथानक के चरित्र–पात्र बदल दें। अपने पास उपलब्ध कठपुतलियों के अनुसार कथानक में फेर–बदल करें ।

संवाद छोटे–छोटे और आसान हों। भाषणबाजी का सहारा न लिया जाए। कठपुतलियों की गतिशीलता तथा हलचल के कारण कथानक आगे बढ़ता है तथा नए–नए प्रसंग बनते जाते हैं और बात दर्शकों तक सही ढंग से पहुंचती रहती है। यह तरीका फलदायी भी साबित होती जाती है।

कभी–कभार बच्चों को कथानक की रूपरेखा बता देनी चाहिए और उन्हें स्वयं संवाद–रचना के लिए प्रेरित करें। ऐसी प्रयासों से बच्चों की भाषा पर पकड़ मजबूत होती जाती है।

कभी –कभार बच्चों के हाथ में कठपुतलियां दे सकते हैं और उन्हें तुरंत

उसी समय खड़े होकर संवादों के जरिए नाटक तैयार करने के लिए कह सकते हैं। लेकिन शिक्षक ऐसे समय सावधानी बरतें कि नाटक लंबा तथा उबाऊ न बन जाए।

3. कठपुतली का खेल प्रस्तुत करने के लिए मंच का होना जरूरी नहीं है। नेपथ्य के किसी हिस्से में छिपकर भी कठपुतली का खेल प्रस्तुत किया जा सकता है। किसी पत्थर के पीछे छिपकर पत्थर पर मेंढक के रूप में कठपुतली नचाई जा सकती है। इसी तरह, पहाड़ के कट–आउट को आधार बनाकर राक्षस नचाया जा सकता है। कई बार तो स्वयं सूत्रधार विशाल कठपुतली के पीछे छिप जाता है और कठपुतली नचाता है। विशाल कठपुतली के खोल में भी सूत्रधार घुस सकता है और कठपुतली के बहाने नाच सकता है। ऐसे समय वह खोल में पूरी तरह छुपा होता है। इस प्रकार बाकायदा मंच के अभाव में भी कठपुतली का खेल प्रस्तुत किया जा सकता है। जापानी पद्धति के अनुसार सूत्रधार काले कपड़े पहनता है और चेहरे को भी काले कपड़े से ढक लेता है। फिर वह कठपुतलियों के साथ मंच पर आता है। अपनी हरकतों से ये कठपुतलियां दर्शकों को इस प्रकार आकर्षित करती हैं कि सूत्रधार की ओर दर्शकों का ध्यान ही नहीं जाता।

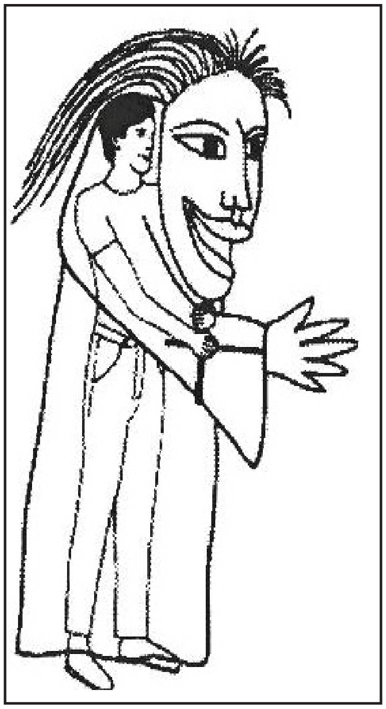

कठपुतली के खेल के लिए यदि बाकायदा मंच बनाने की सोचें तो एक वातावरण बनाने के दृष्टिकोण से नेपथ्य का निर्माण तथा कट–आउट्स का उपयोग भी जरूरी है। इस हेतु कभी पृष्ठभूमि में रंगीन परदा टांगना चाहिए, तो कभी लकड़ी से बने स्टैंड पर पेड़, मकान, पाठशाला आदि के कट–आउट्स खड़े करने चाहिए। इससे मंच पर एक गहराई का निर्माण होता है। इस सुविध ा के कारण कठपुतली पेड़ के इर्द–गिर्द घूम–फिर सकती है, घर के भीतर आ–जा सकती है।

कठपुतली के खेल में पात्रों के लिए आवश्यक छोटी–मोटी वस्तुएं, उपकरण, औजार आदि बाजार में आसानी से उपलब्ध नहीं होते । उनका निमार्ण हमें स्वयं करना होता है। निर्माण करते समय कठपुतली के आकार के अनुसार उनका आकार तय करना होता है। बहरहाल, विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को बनाना आवश्यक ही होगा। उदाहरण के तौर पर, एक छोटी बच्ची अपने पाठ्यक्रम की पुस्तक का हवाला देकर अपनी मां से कहेगी कि वह उसे अमुक–अमुक कविता को पढ़ना और लय पर गाना सिखाए। मां उसे सिखाती है। ऐसे समय लड़की के हाथों में (नकली) पुस्तक, जिसके मुखपृष्ठ पर पुस्तक का नाम लिखा हो, का होना बहुत आवश्यक है। बच्चों को ऐसी छोटी–छोटी बातें एक अलग प्रकार का आनंद देती है। गिलास, बोतल, छाता, कुर्सी, रेडियो सेट, कुल्हाड़ी आदि वस्तुओं की भी जरूरत पड़ती है। इन जरूरतों को पूरा करने के लिए बोतल तथा डिब्बों के ढक्कन, पदक, छोटे खाली डिब्बे आदि निरर्थक वस्तुओं को रंगकर अपनी जरूरत के अनुसार रूप दिया जा सकता है। लेकिन ऐसा करना अनिवार्य है और इसे टाला नहीं जाना चाहिए।

4. कठपुतली खेल का प्रस्तुतीकरण महत्वपूर्ण और कठिन काम होता है। क्योंकि सूत्रधार को अपना सारा ध्यान कठपुतली पर केंद्रित करना होता है। कई बार स्वयं सूत्रधार अभिनय करने लगता है, फलस्वरूप कठपुतली सूत्रधार के हाथ में बेजान पड़ी रहती है। सूत्रधार को इस बात पर ध्यान देना होगा और सही संचालन की आदत डालनी पड़ेगी।

एक और बात सूत्रधार को ध्यान में रखनी होती है, वह यह कि कठपुतली जब बोले उसी समय उसकी हलचल भी हो। बाकी समय कोई हरकत न करते हुए कठपुतली को केवल खड़ा रहना चाहिए। यदि मंच पर दो ही पात्र हों, तो यह उचित होगा कि एक कठपुतली की गतिविधि के जवाब में दूसरा हलचल करे। कई बार यह भी देखने

में आता है कि सूत्रधार के हाथों में कठपुतली आई नहीं कि वह आदतन उसे हिलाने लगता है। इस कारण, जब कठपुतली कोई संवाद नहीं बोल रही होती तब भी वह हिल रही होती है। और इसी कारण दर्शक यह नहीं समझ पाते कि कौन–सा पात्र बोल रहा है, कौन–सा नहीं।

हर कठपुतली को एक अलग आवाज दी जानी चाहिए। बूढ़ी औरत, लड़की, चूहा, हाथी आदि विभिन्न पात्रों की जबान में उनके चरित्र के अनुसार आवाज डाली जाए। संवाद में उतार–चढ़ाव भी पात्रों के अनुसार ही हो। यह तरीका अपनाने से प्रस्तुति अधिक असरदार बनेगी। कई बार अपनी असली आवाज बदलकर विचित्र आवाज निकाली जाए तो अलग ही मजा आता है। आवाज में परिवर्तन के कारण ही दर्शक पात्रों को पहचान पाते हैं। क्योंकि कठपुतलियां अपने चेहरे पर भाव–प्रदर्शन तो कर नहीं सकतीं। कई बार वे अपने होंठ भी नहीं हिला पातीं। अतः आवाज के माध्यम से ही अभिनीत पात्र का चरित्र अधिक से अधिक उभारा जाना चाहिए।

आमतौर पर एक ही समय मंच पर बोलने वाली कठपुतलियों की संख्या चार या पांच ही हो। कई पात्रों को इकट्ठे मंच पर देखकर दर्शक भ्रमित हो जाते हैं। लेकिन नृत्य प्रस्तुत करते समय कठपुतलियों की संख्या अधिक भी हो सकती है। क्योंकि ये कठपुतलियां केवल नृत्य प्रस्तुत करती हैं, संवाद नहीं बोलतीं। संगीत का अपना अलग असर होता है।

जिस तरह जीवित पात्रों के नाटकों में पात्र मंच पर बिखरे होते हैं, उसी तरह कठपुतली के खेल में भी पात्रों को अलग–अलग जगड खड़ा करना चाहिए, न कि एक ही कतार में। ऐसा करते समय पात्रों को आगे–पीछे तथा दो–दो, तीन–तीन के दलों में खड़ा करना चाहिए। यह तरीका अपनाने से मंच की गहराई का पता चलता है। कथानक में भी जान आती है।

कठपुतली के खेल को संगीतमय बनाया जाए, तो वह अधिक मनोरंजक साबित होता है। संगीत रिकॉर्ड किया जा सकता है। लेकिन प्रत्यक्ष खेल के समय निर्मित संगीत का अपना असर होता है। बहरहाल, पाठशाला के स्तर पर रिकॉर्डर, साज, गायक, वादक आदि बातों को लेकर अड़ियल रूख नहीं अपनाना चाहिए, बल्कि रचनात्मक दृष्टिकोण रखते हुए संगीत का निर्माण होना चाहिए। उदाहरणतः मुंह से तरह–तरह की आवाजें निकालना, खिलौना–वाद्ययंत्रों का उपयोग, डिब्बों, बोतलों, बर्तनों आदि घरेलू उपकरणों की मदद से संगीत का निर्माण आदि। कल्पना–शक्ति तथा प्रतीकात्मकता को अपनाकर कठपुतली के खेल को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

खेल की अवधि 10 से 15 मिनट से अधिक न हो। छोटे–छोटे खेल अधिक संख्या में प्रस्तुत किए जाएं। एक ही खेल काफी लंबे समय तक दिखाते रहें तो दर्शक अपनी रूचि खो देते हैं।

कठपुतली का खेल एक परंपरागत कला है। वर्तमान समय से उसे आधुनिक स्वरूप देने की कोशिश की जा रही है। कोई भी लोक–कला स्वयं में मौजूद खुलेपन तथा लचीलेपन के कारण अपना स्थान बनाती है। अतः कठपुतली कला को आधुनिक स्वरूप देते समय उसका लचीलापन नष्ट न हो, इसका ध्यान जरूर रखा जाए। उसका खुलापन भी सीमित न हो। इस लिहाज से शुरूआत से लेकर प्रस्तुतीकरण तक कल्पनाशीलता तथा सृजनात्मकता को महत्व देना चाहिए। तभी एक अनोखी कला दर्शक देख पाएंगे।

उंगलियों से नचाई जाने वाली कठपुतलियां

सामग्री : थोड़ा मोटा कागज। पुराना पोस्टकार्ड या नोटबुक के मुख्यपृष्ठ का भी उपयोग किया जा सकता है। रंग, कैंची आदि।

तरीका : लगभग 10   10 सेमी आकार के कागज पर यहां दिखाए गए चित्रों के नमूनों के अनुसार हाथी, सूअर या लड़की का चित्र बनाएं। हाथी की सूंड के स्थान पर अपनी उंगली की मोटाई के आकार का छेद करें। लड़की या किसी भी प्राणी के दो पैर बनाने हेतु दो गोलाकार टुकड़े काटकर अलग करें। कठपुतलियों पर बढ़िया रंग चढ़ाएं। कठपुतली के संचालन हेतु अपनी उंगली का उपयोग करें। अपनी तर्जनी को हाथी की हिलती सूंड बनाएं। लड़की अथवा अन्य किसी प्राणी के दो पैर दर्शाने के लिए तर्जनी तथा बीच की उंगली उपयोग में लाएं। इस तरह दो हाथों में दो कठपुतलियां पहनकर खेल आगे बढ़ाएं।

स्कूल में भाषाएं पढ़ाते समय कठपुतलियों की छोटी–छोटी हरकतों का सहारा लें और बच्चों का शब्दों तथा आसान वाक्यों से परिचय कराएं।

अवधि : केवल 10 मिनट।

कागज की थैलियों से बनी बोलती कठपुतलियां

सामग्री : लगभग 17 29 सेमी आकार वाली कोरे कागज की थैलियां, रंग, कैंची आदि।

तरीका : दिखाए गए चित्रों के नमूनों के अनुसार कागज की थैली को तह कर लें। तह किए गए हिस्से की लंबाई थैली की लंबाई के आधे से कम हो। चूहा बनाने के लिए नुकीले हिस्से की जरूरत होती है। अतः पुनः दो त्रिकोणीय तह कीजिए। तह करते समय थैली के बंद हिस्से का उपयोग करना चाहिए, जबकि खुले हिस्से को खुला ही रखना चाहिए। इसी खुले हिस्से में हाथ डालकर कठपुतली नचाना होता है। कठपुतली के कान दिखाने हों तो अलग कागज का उपयोग होना चाहिए। चुने हुए प्राणी के कान की तरह कागजी कान काटे जाएं और उन्हें तह किए गए हिस्से के पिछले भाग में चिपकाया जाए।

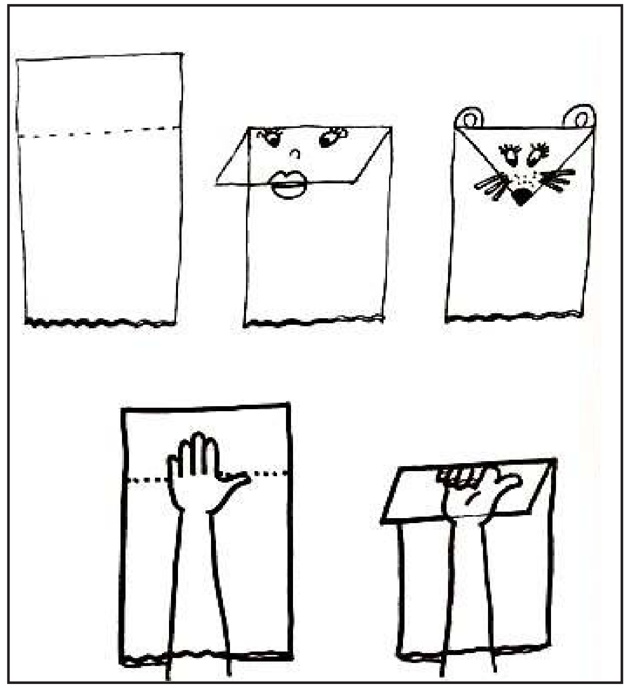

इस तरह तैयार कठपुतली को रंगें। मानव–कठपुतली हो तो ऊपरी तह वाले हिस्से पर ऊपरी होंठ का निशान बनाएं, जबकि निचली तह पर निचले होंठ का निशान बनाएं। जब दोनों हिस्से हिलेंगे तो ऐसा लगेगा कि कठपुतली बोल रही है। कठपुतली के माध्यम से कोई प्राणी दिखाया गया हो तो उसके जबड़े दिखाएं।

हाथ का पंजा थैली में डालकर अपनी चार उंगलियों को भीतर की ओर मोंड़े। ये मुड़ीं उंगलियां तह किए गए स्थान से सटाकर रखें। इन उंगलियों को इकट्ठे हिलाया जाए तो ऐसा महसूस होता है कठपुतली बोल रही है।

अवधि : केवल 10 मिनट।

सामान्य हाथकठपुतली–खरगोश और कछुआ

सामग्री : ऐसा फेल्ट कपड़ा जिसके धागे न निकलते हों, अथवा कोई भी मोटा–सा सूती कपड़ा।

सूई–धागा, कैंची, बटन अथवा हिलने वाली आंखें, रंग।

तरीका : दिखाए गए चित्र के अनुसार किसी कागज पर पंजा रखकर उसकी बाहरी रूपरेखा अंकित कर लें। रेखाएं उंगलियों से सटाकर नहीं बल्कि लगभग आधा इंच का अंतर रखकर खींचीं जाएं। इस आकृति को काट लें। इसी आकृति को आधार बनाकर कपड़े की दो आकृतियां काट लें। इस हेतु एक कपड़े पर दूसरा कपड़ा बिछाएं ताकि कपड़े की दो आकृतियां समान और इकट्ठी मिल जाएं। यदि फेल्ट कपड़े का उपयोग किया गया हो तो दोनों कपड़ों को ऊपरी सतह पर ही सिल लिया जाए, पंजे का निचला हिस्सा न सिलें, ताकि इस खोल में हाथ डाला जा सके और कठपुतली नचाई जा सके। खरगोश या चुने हुए प्राणी को ध्यान में रखकर अलग कपड़े पर कान की आकृति काट लें। इसे बतौर कान पंजे के खोल पर सिल लें। यदि आम सूती कपड़ा का उपयोग किया गया हो तो सिलाई भीतरी हिस्से में करें। कपड़े के दिखाई देने वाले हिस्से पर कान सिलें। दोनों मामलों में सिलाई हाथ से की जा सकती

है या मशीन पर।

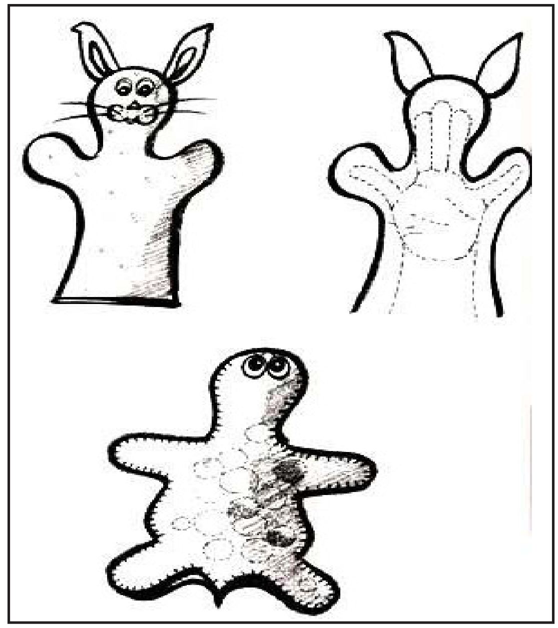

कछुए की आकृति बनानी हो तो दो पैर भी जोड़ने होंगे। नमूने के चित्र में यह आकृति दिखाई गई है। इन पैरों को न सिलें, वरना कठपुतली में हाथ डालना असंभव हो जाएगा।

इन कठपुतलियों पर अलग–अलग रंगीन कपड़ों से बनी नाक, आंख, मुंह चिपकाएं। रेशम की कढ़ाई भी की जा सकती है। काफी छोटे बच्चे भी फेल्ट पेन की मदद से उसमें रंग भर दे ंतो कठपुतली सुंदर दिखेंगी।

इस तरीके को अपनाकर एक साथ लड़की, लड़का, मां, राक्षस, परी आदि कठपुतलियों का निर्माण करना हो, तो उनसे बाल, दाढ़ी–मूंछें आदि बनाई जा सकती हैं। गले के इर्द–गिर्द की झालर के लिए अलग से कोई कपड़ा उपयोग में लाना चाहिए, या फिर (खाना बनाते समय पहने जाने वाले एप्रन की तरह) कठपुतली को एप्रन पहनाया जाए ताकि कठपुतली का रूप और निखर आए। प्रतीकात्मकता का सहारा लेकर बटन, लेस आदि का उपयोग कर पोशाक को अलग रूप दिया जा सकता है।

कठपुतली के पंजे एक अंगूठे तथा चार अंगुलियों के माध्यम से दिखाने चाहिए। ऐसा करने से दर्शक मानव तथा अन्य प्राणियों में अंतर कर पाते हैं।

इस प्रकार सुझाई गई कठपुतलियां बनाने तथा नचाने में बड़ी आसानी होती है।

सुझाव : चेहरा बनाने के लिए खाली बोतलों, डिब्बों या गेंद का भी उपयोग हो सकता है। सिर पर कपड़े का टुकड़ा गोलाकार नहीं, बल्कि सीधे तानकर रखा जाना चाहिए। डिब्बे या गेंद में एक छेद किया जाए और उसमें सिर वाला हिस्सा डाला जाए। हिब्बे, गेंद या बोतल पर कागज चिपकाया जाना चाहिए। कोई पुराना मोजा भी तानकर चिपकाया जा सकता है। उस पर नाक, आंखें और मुंह चिपकाएं। गेंद पर दोनों ओर दो आंखें तथा मोटे कागज से बनी चोंच चिपका दी जाए तो कठपुतली पक्षी का रूप ले लेती है।

अवधि : 40 से 60 मिनट।

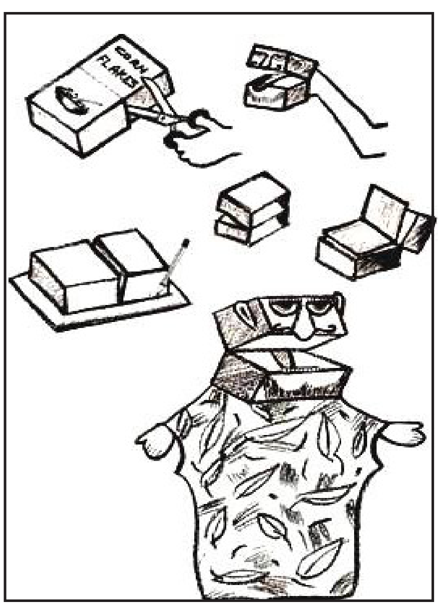

खाली डिब्बे से बनी मुंह हिलाने वाली कठपुतली

समग्री : साबुन का कवर या 555 सिगरेट का खाली डिब्बा, रंग, गोंद, कैंची, कपड़ा आदि।

तरीका : साबुन के खाली कवर या सिगरेट वाली खाली बीस डिब्बों को मेज पर आड़ा रखें। जिस तरह नमूने के चित्रों में दिखाया गया है उसी तरह तीन ओर से, बीचो–बीच हल्का–सा चीरा लगाएं। डिब्बे के न काटे गए निचले आड़े हिस्से पर कोई एक कोरा कागज चिपकायें। इसके बाद डिब्बे की की तह करें। ऐसा करने से हम अपनी चार उंगलियां तथा अंगूठा डिब्बे के दो खानों में डालकर कठपुतली का मुंह हिला पाएंगे। किसी अन्य कागज से कान, नाक, आंख तथा जीभ बनाकर उन्हें कठपुतली पर

चिपकाएं।

ऐसी कठपुतली उसके मुंह को खोल तथा बंद कर नचाई जा सकती है। इसे पूरे आकार का पंजों सहित कोई पहनावा पहना दिया जाए तो कठपुतली आकर्षक बन जाएगी। नमूने के चित्र के अनुसार एकमुश्त कपड़े को शरीर का आकार दिया जाए। उसके ऊपरी हिस्से को अंगूठे वाले खाने में हल्के–से चिपका दें। इस कपड़े पर लंबा राक्षस, नाटा सरदार, मोटी तोंद वाला राजा जैसे मजेदार चित्र बनाए जा सकते हैं। ये चित्र उनके अपने शारीरिक आकार को ध्यान में रखकर बनाए जाने चाहिए।

अवधि : 45 से 60 मिनट ।

स्पंज से बनी छड़ (शलाका) कठपुतली –शेर तथा चूहा

समग्री : स्पंज, स्पंज चिपकाने के लिए गोंद, सुतली, रंग, हिलने–डुलने वाली आंखें, तार, छड़ आदि।

तरीका : एक–चौथाई इंच चौड़े स्पंज के टुकड़े को गोलाकार बनाएं। इस गोल आकार पर ही कठपुतली का आकार निर्भर रहेगा। गोल बड़ा तो कठपुतली बड़ी, गोल छोटा तो कठपुतली छोटी। शेर बनाने हेतु बड़ा टुकड़ा गोलाकार हो, जबकि चूहे के लिए छोटा। इस गोलाकार टुकड़े में से चौथाई आकार का टुकड़ा काट लें। बचा हुआ तीन–चौथाई हिस्सा स्पंज चिपकाए जाने वाले गोंद से चिपका दें। इस तरह एक कोण का आकार बन जाएगा। इस कोण का ऊपरी नुकीला हिस्सा ऐसे काटें ताकि अपने हाथ का पंजा उस छेद में से बाहर निकल सके। इस तरह तैयार होगा शेर का शरीर।

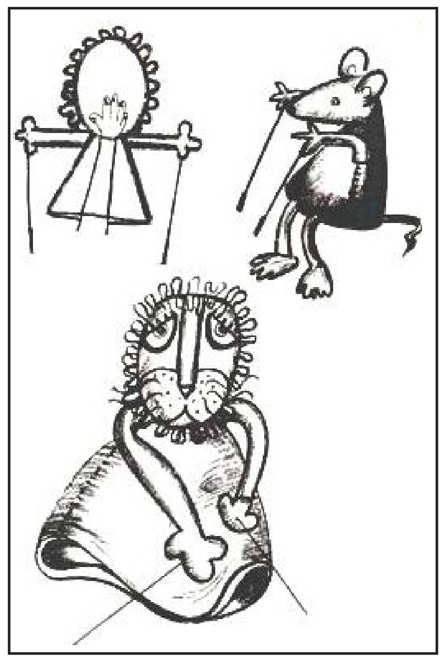

इसके बाद स्पंज के दो टुकड़े करें। ये टुकड़े आकार में लंबोतरा गोल होने चाहिए। ये दोनों टुकड़े भी एक–दूसरे के साथ पहले ही की तरह चिपकाएं ताकि हमारा पंजा उसमें से बाहर निकल सके। यह हिस्सा शेर का चेहरा कहलाएगा। अब चेहरे तथा धड़ का खुला हिस्सा एक–दूसरे के साथ चिपकाएं। चित्र में दिखाए गए तरीके के अनुसार कठपुतली के मुंह तक हमारा हाथ जाना चाहिए। चेहरे पर कागज से बनी या हिलने–डुलने वाली आंखें चिपकाएं। उभरे गाल दिखाने हेतु गालों पर पुनः स्पंज के गोलाकार टुकड़े चिपकाएं। मूंछों के रूप में नाईलोन धागे उपयोग में लाए जाएं। गर्दन के हिस्से वाले लंबे बालों के लिए सुतली या जूट (पटसन) का उपयोग कर उन्हें चेहरे और गर्दन के इर्द–गिर्द चिपकाया जाए।

शेर के हाथ शेर के शरीर को ध्यान में रखकर बनाने चाहिए। इस हेतु स्पंज की दो मोटी पटिटयों का उपयोग करना चाहिए। स्पंज के ही पंजे बनाकर इन हाथों पर चिपकाए जाएं। हाथ का दूसरा सिरा शेर के कंधे से चिपकाएं। इस तरह शेर की कठपुतली बन जाती है। पीले रंग का स्पंज उपयोग किया गया हो तो बने–बनाए शेर को रंगने की जरूरत नहीं होगी। शेर के दोनों पंजों के भीतर छोते वाली तार हिलाएं। छड़ तथा हाथ कठपुतली का तंत्र इस कठपुतली को नचाते समय उपयोग में लाना चाहिए।

चूहा बनाते समय भी ऊपर दिए गए तरीके को अपनाना चाहिए। ध्यान में रखना होगा कि चूहे का मुंह पीछे चौड़ा और आगे नुकीला होता है। अतः इस आकार के स्पंज का एक टुकड़ा काटा जाए और उसे धड़ के साथ चिपकाया जाए। इसमें स्पंज के दो गोलाकार कान लगाएं। मुंह के खुले हिस्से पर स्पंज का गोलाकार टुकड़ा चिपकाकर उसे बंद कर दें। चूहे के पैर भी बनाने होंगे। पीछे दुम लगानी होगी। उपयोग किए गए स्पंज का रंग

राख जैसा हो तो चूहे को रंगना जरूरी नहीं है। स्पंज अपने आप में मुलायम तथा वजन में हल्का होता है जिसके कारण उससे बने चूहे की हलचल सहज और स्वाभाविक होगी। वह जीवंत भी लगेगा।

सुझाव : पंचतंत्र की शेर तथा चूहे वाली कथा प्रस्तुत करने में इन कठपुतलियों का अच्छा उपयोग हो सकता है। इस कथा का अंत बदलकर कथा को एक नया मोड़ दिया जा सकता है। यह परिर्वतन इस प्रकार हो सकता है–चूहा अपने दांतों से जाल काटकर शेर को आजाद करता है। शेर चूहे से सवाल करता है, ''तुम्हारे दांत इतने मजबूत कैसे? मैं तो इस जाल को काट ही नहीं पाया। '' चूहा जवाब देता है, ''महाराज, मैं तंबाकू या गुटके का सेवन नहीं करता। इसी कारण मेरे दांत मजबूत हैं। आप भी इनका सेवन बंद कर दीजिए, तो आपके भी दांत मजबूत हो जाएंगें।''

अवधि : 60 मिनट।

छड़ (शलाका) कठपुतली–महाराजा

समग्री : प्लास्टिक की गेंद, कपड़ा, सूई–धागा, बटन अथवा हिलने वाली आंखे, छड़, तार, गोंद, कैंची आदि।

तरीका : मध्यम आकार के प्लास्टिक की गेंद में एक छेद करे। छेद में छड़ को कसकर फंसा दें। यदि छड़ 12 इंच लंबी है तो वह 3 इंच भीतर हो और 9 इंच बाहर। गेंद पर कसकर मोजा बांधें ।मोजे का खुला हिस्सा गेंद से बाहर डंडे को छूना चाहिए। ऊपर का थोड़ा हिस्सा काट लें और दोनों हिस्सा सिलकर समतल कर लें। कठपुतली के इस चेहरे पर नाक, आंखें तथा मूंछें लगाएं। महाराजा का रूप देना हो तो सिर पर फेंटा बांधें । स्त्री का रूप देना हो तो काली ऊन के बाल बनाने चाहिए।

चित्र में दिखाई गई विधि के अनुसार समान आकार के दो कपड़े लिये जाएं। इस पर महाराजा को पहनाए जाने वाले बांह वाले कुरते की रूपरेखा बना लें। भीतरी हिस्से पर सिलाई करें। गला तथा बांहो के सिर न सिलें। पहनाने हेतु कुरते को सीधा करें। छड़ के इर्द–गिर्द कुरते को सिल दें। दोनों बांहों के सिरों पर छोटे पंजे बनाएं। पंजा सिलने हेतु फेल्ट या मोटा सूती कपड़ा उपयोग में लाएं। पंजों पर छाले वाले दो तार चिपकाएं या सिलें। कुरते में हाथ डालकर छड़ को पकड़े और कठपुतली का मुंह हिलाएं। अपने दूसरे हाथ से कठपुतली के हाथों वाली छड़ों को पकड़कर कठपुतली का हाथ नचाया जा सकता है। इस प्रकार छड़ (शलाका) कठपुतली बनाएं। कठपुतली को अधिक सजाना हो तो जाकिट, गुलबंद आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है।

अवधि : 60 मिनट।

सूत्र या डोर कठपुतली–विदूषक

सामग्री : एक मध्यम आकार वाली प्लास्टिक की गेंद, 24 24 इंच आकार का पतला कपड़ा, मोटा कागज, मोटा धागा, लंबी सूई, एक 20 इंच लंबी और एक 12 इंच लंबी छड़, रंग, गोंद, कैंची आदि।

तरीका : गेंद में आमने–सामने दो छेद करें। ऊपर वाला छेद बड़ा और नीचे वाला छेद छोटा हो।

चित्र में दिखाई गई विधि के अनुसार कपड़े को अपने सामने ऐसे फैलाएं कि उसका एक सिरा उत्तर की ओर और दूसरा दक्षिण दिशा की ओर रहे। विदूषक के दो पैर बनाने हेतु कपड़े के दक्षिणी अर्थात् निचले सिरे से कपड़े के मध्य (बिंदु) तक कांटे। पूर्वी तथा पश्चिमी सिरों से विदू ाक के दो हाथ बनाएं। कपड़े के उत्तरी सिरे को गेंद के बड़े छेद में से भीतर डालकर छोटे छेद में से बाहर निकाल लें। फिर इस सिरे पर गांठ लगा दें या सिरा गोंद से चिपका दें। ऐसा करने से गेंद तथा कपड़ा इकटठे रह पाएंगे।

मोटे कागज को काटकर हाथ तथा पैरों के चार पंजे बनाएं । हाथ के पंजे पूर्व तथा पश्चिम के सिरों पर चिपकाएं और पैर के पंजे दक्षिणी सिरे पर । टोपी कपड़ा अथवा कागज की बनाएं। टोपी का ऊपर का सिरा नुकीला हो। निचला हिस्सा गेंद पर चिपकाएं । चेहरा सजाने हेतु रंगीन कपड़ों का उपयोग हो। चेहरे पर हिलने–डूलने वाली आंखें लगाई जाएं। गले तथा पंजों के इर्द–गिर्द रंगीन झालर लगाएं। बाजार में उपलब्ध रंग–बिरंगी गेंद का उपयोग किया जाए तो विदूषक की छवि अधिक आकर्षक बन जाएगी।

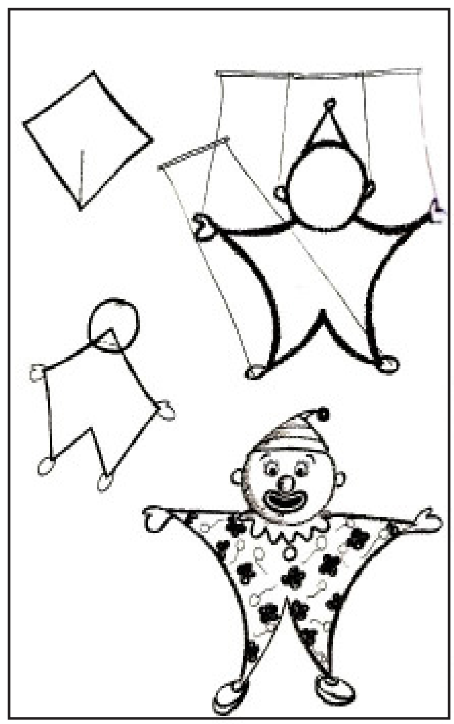

ऐसी सूई, जो विदूषक के एक कान में से घुसाकर दूसरे कान में से निकल पाए, में मोटा धागा पिरोएं। धागा कम से कम 18 से 20 इंच लंबा हो। छड़ 20 इंच लंबी हो। धागे के दोनों सिरे छड़ पर उन बिन्दुओं पर बांधें जाएं, जिनके बीच का अंतर दो कानों के बीच के अंतर के समान हो। छड़ यदि दाहिने हाथ में पकड़ी जाय, तो विदूषक का चेहरा सामने की ओर रहेगा । दो पंजों से दो डोरियां बांध ा दें। दोनों डोरियों के सिरे छड़ के दोनों सिरों के साथ बांध दें। डोर इतनी लंबी हो ताकि विदूषक के हाथ समकोण की स्थिति में बने रहें। अब 12 इंच लंबी दूसरी छड़ अपने बाएं हाथ में पकड़कर रखें। दाहिने हाथ की छड़ जिसे फासले पर पकड़कर रखी गई हो, उसी फासले पर डोर का एक सिरा पैरों के साथ बांधा जाए, दूसरा सिरा छड़ के साथ बांध दिया जाए।

बांए हाथ की छड़ की मदद से दायां–बायां तकनीक अपनाकर आगे बढ़ें। इस तरह विदूषक के कदम भी आगे बढ़ते जाएंगे । ऐसा करते समय दाहिने हाथ की छड़ भी आगे बढ़ती रहनी चाहिए, वरना विदूषक के कदम तो आगे बढेंगे लेकिन शरीर पीछे ही रहेगा। इस तरीके को अपनाकर और किस प्रकार की हलचल की या कराई जा सकती है, इस बारे में स्वयं विचार करना होगा और तदनुसार कोशिश करनी होगी।

संगीत के ताल पर सूत्र कठपुतली का नृत्य भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

अवधि : 50 मिनट।

छाया कठपुतली

समग्री : फाइल बनाने हेतु उपयोग में लाया जाने वाला मोटा कागज, बेंत या बांस की लाठी, कागज काटने हेतु कटर तथा धागा।

तरीका : इन कठपुतलियों को बनाने की परंपरागत विधि में बकरी अथवा हिरन की खाल उपयोग में लाई जाती है। एक तो चमड़े के फटने की संभावना नहीं रहती, दूसरे, उसके पारदर्शक होने के कारण उस पर चढ़ाए गए रंग की छाया भी रंगीन दिखाई देती है। किंतु, हम जानते है कि वन्य प्राणियों को मारकर उनकी खाल का उपयोग करना सही नहीं है। अतः हमें ऐसे मोटे कागज का उपयोग करना चाहिए जो आसानी से न फट सके। साथ ही कठपुतली ठीक से खड़ी रह पाए, न कि मुड़ जाए। इस दृष्टिकोण से फाइल बोर्ड का उपयोग सही होगा।

सबसे पहले अपनी आवश्यकतानुसार सादे कागज पर मनपसंद चित्र की रूपरेखा खींच ली जाए। कठपुतली को जिस प्रकार नचाना हो उसे ध्यान में रखते हुए कठपुतली के हाथ, पैर और सिर को शरीर से अलग कर लें। काटते समय धड़ तथा इन अंगों की रूपरेखा के बाहर भी थोड़ा जगह छोड़े ताकि पुनः दोनों हिस्सों को सुविधानुसार बांधा जा सके। इसी सुविधा के कारण शरीर के अंग हिल पाएंगे। नमूने के चित्र में दिखाई गई कठपुतली का केवल हाथ ही हिलना था, अतः केवल एक ही जगह धागे की सहायता से बांधा गया है।

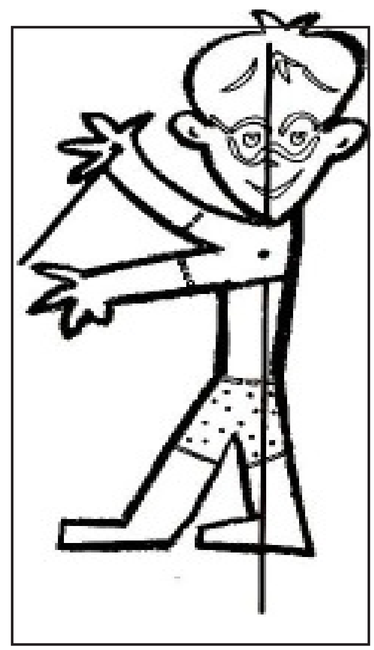

सादे कागज पर बने चित्र को आधार बनाकर एक चित्र मोटे कागज पर बना लें। बेंत या बांस के दो खड़े हिस्से करें। इन हिस्सों में कठपुतली फंसाएं। बेंत या बांस का उपयोग करने के कारण कठपुतली हमेशा खड़ी रहेगी, झुकेगी या मुड़ेगी नहीं। लाठी कठपुतली से लगभग छह इंच लंबी होनी चाहिए ताकि कठपुतली को आसानी से नचाया जा सके। शरीर के अंग को धड़ के साथ जोड़ दें। इस हेतु धड़ पर अंग–विशेष रखें । छेद में मोटा धागा पिरोकर धागे के सिरों को स्वतंत्र रूप से गांठ बांध दें। पिन का भी उपयोग किया जा सकता है। हाथ हिलाने हेतु साइकिल के पहिए का आरा (तीली) सही साधन होगा। चूंकि आरे का एक सिरा समकोण में मुड़ा होता है अतः इन्हें बांधने में आसानी होती है।

इन कठपुतलियों के नचाने हेतु सफेद कपड़े से बना मंच/परदा जरूरी होता है। नाट्यगृह में अंधेरा भी होना चाहिए, क्योंकि छवियां अंधेरे में ही ठीक से दिख पाएंगी। स्कूल के कमरे में इन कठपुतलियों को नचाना हो तो तदनुसार व्यवस्था करनी होगी । इस हेतु मेज के ऊपरी हिस्से पर दो खड़ी लाठियां बांध दें। इनके सहारे धोती जैस पतला सफेद कपड़ा तानकर फैला दें । परदे के पिछले हिस्से में टेबल –लैम्प जलाकर रखें। सूत्रधार को मेज के नीचे बैठकर या फिर खड़ा होकर कठपुतलियां नचानी चाहिए। इन्हीं नाचती कठपुतलियों की छवि परदे पर दिखाई देगी। कमरे में जितना अधिक अंधेरा होगा, छाया–कठपुतलियों का प्रदर्शन उतना ही आकर्षक होगा। कठपुतलियां नचाते समय अपनी छाया परदे पर नहीं दिखाई देनी चाहिए। सूत्रधार को यह सावधानी अवश्य बरतनी चाहिए।

कठपुतलियों को सजाने हेतु तथा शरीर के वस्त्र, गहने आदि दिखाने हेतु कठपुतली बनाते समय मोटे कागज पर रेखा, बिंदु, टिकिया, त्रिकोण चतुष्कोण आदि नक्काशी उकेरनी चाहिए । नक्काशी के छेदों में से रोशनी निकलेगी और परदे पर वस्त्र, गहना आदि दिखाई देगा।

सुझाव : रंगीन छाया दिखानी हो, तो उकेरी गई नक्काशी पर अपनी पसंद का जिलेटीन पेपर चिपका दिया जाए। इस तरह कठपुतली रंग–बिरंगी और आकर्षक दिखाई देगी।

अवधि : 60 मिनट।

कठपुतली नाटिका

मैं यशोदा जरूर बनूंगी

(गोद संस्कार)

पात्र–परिचय : पति, पत्नी और दीदी।

अवधि : 10 मिनट।

पति : यशोमति मैया से बोले नंदलाला
राधा क्यों गोरी मैं क्यों काला

पत्नी : मत गाइए यह गाना!

पति : क्यों ?.... तुम्हारी आंखों में पानी !

पत्नी : जैसे आप कुछ जानते ही नहीं !

पति : जानता हूं। ऐसे बोल बोलने वाला कोई बालक हमारे घर में नहीं है इसलिए तुम रो रही हो न! लेकिन रोने से क्या होगा ?

पत्नी : जानता हूं। ऐसे बोल बोलने वाला कोई बालक हमारे घर में नहीं है इसलिए तुम रो रही हो न ! लेकिन रोने से क्या होगा ?

पत्नी : तुम्हारा क्याकृ जो बीतती है, मुझ पर ही बीतती है। उलाहने देते हैं लोग मुझे। किसी के घर में कोई शुभ कार्य हो, तो भी मुझे कोई नहीं बुलाता। आप मर्दों को उलाहने नहीं सुनने पड़ते, न ही कोई आपको यह कहकर चिढ़ाता है कि आपको औलाद नहीं है।

पति : मैं तो बार–बार कहता हूं कि हम दीदी की बच्ची को अपने पास रख लेते हैं।

पत्नी : क्या आप नहीं जानते कि जीजा जी की नजर इस मकान पर गड़ी है ? दो लड़कियां हैं तो कहेंगे ही कि किसी एक को अपने पास रख लो। इसी बहाने उनका बोझ हल्का हो जाएगा। लड़के के बारे में कहकर देखिए! कन्नी काट जाएंगे।

पति : फिर हुज्जतबाजी ! तुम खुद अपनी मौसेरी बहन के किसी लड़के को अपने पास रखना चाहती हो, मैं जानता हूं। लेकिन ख्याल रखो, इस घर में कोई बच्चा आएगा, तो वह मेरे ही किसी रिश्तेदार का।

पत्नी : हां, ले आओ, मगर देखना कि मैं उसकी परवरिश करती हूं क्या।

(पति गुस्से में निकल पड़ता है।) (दीदी आती है।)

दीदीः क्यों भाभी, ऐसे चेहरा क्यों लटका हुआ है ?

पत्नी : वही रोज की चिख–चिख। बच्चा न होने का दोष मुझ पर ही मढ़ा जाता है।

दीदी : तो बच्चा गोद ले लो।

पत्नी : यही तो विवाद का विषय है। किसके रिश्तेदार का बच्चा गोद लें, इनके या मेरे ? दोनों ओर के रिश्तेदार हमारे पीछे पड़े हुए हैं।

दीदीः तो फिर किसी अनाथालय का बच्चा गोद ले लो !

पत्नी : कैसी बातें कर रही हैं दीदी ? हमें अपने ही किसी रिश्तेदार का बच्चा चाहिए।

दीदीः इससे क्या अंतर पड़ता है भाभी ?

पत्नी : खून का रिश्ता ही पक्का रिश्ता होता है।

दीदी : अच्छा, ये तो बताओ, क्या आप दोनों एक–दूसरे से बहुत प्रेम करते हो ?

पत्नी : हां, बहुत प्रेम करते हैं । एक–दूसरे के अलावा हमारा है ही कौन ? वह कभी मेरा दिल नहीं दुखाते

दीदी : शादी से पहले आप दोनों एक–दूसरे के रिश्तेदार थे ?

पत्नी : नही ंतो !

दीदीः फिर भी एक–दूसरे से इतना प्यार करते हो ?

पत्नी : दीदी, पति–पत्नी का रिश्ता ही ऐसा होता है कि वे एक–दूसरे से प्यार करते हैं।

दीदीः इसका मतलब है कि रिश्ते में से ही प्यार उभरता है। अनाथालय का बच्चा गोद लिया जाए,

तो उससे भी रिश्ता बन जाएगा। ऐसे बच्चे से आप प्यार नहीं करोगे ?

पत्नी : लेकिन दीदी, अनाथालय के बच्चों का कुछ अता–पता नहीं होता । किसकी संतान है? कैसे पैदा हुई ? तरह–तरह के सवाल मन में पैदा होते हैं।

दीदी : भाभी, हर बच्चा स्त्री–पुरूष के संबंधों से ही पैदा होता है। क्या यह भी बताना होगा ? भाभी, मां–बाप की गलतियों की सजा बच्चे क्यों भुगतें भला ?

पत्नी : लेकिन दीदी, ऐसे बच्चे की न कोई जाति होती है, न कोई धर्म। उसे अपना कैसे मानें ?

दीदी : भाभी पैदा हुए बच्चे की क्या जाति और धर्म भला ! उसे जाति तथा धर्म की सीमाओं में तो हम बांध ाते हैं संस्कारों के जरिए, रीति–रिवाजों के जरिए, उसे अपने ढंग से पढ़ा–लिखाकर।

पत्नी : दीदी, अनाथालय से बच्चा लाओं यानी ढेरों कायदे–कानूनों में फंस जाओ। इससे तो बेहतर है जान–पहचान का कोई बच्चा गोद लेकर उसकी परवरिश की जाए।

दीदी : लेकिन उस बच्चे का भविष्य ?

पत्नी : हम संवारेंगे।

दीदीः मान लो कि आपके जीवन में कुछ भला–बुरा हो जाता है तो? वह बच्चा भी अनाथ हो जाएगा।

पत्नी : लेकिन दीदी, अगर हम संस्था के पास जाएं तो वहां काफी झंझट है। कागज–पत्र....सर्टिफिकेट

दीदी : भाभी, बच्चे कोई खिलौना नहीं होते। जिस तरह मां–बाप किसी नन्हे बच्चे की छान–बीनकर अपनी पंसद के बच्चे को ही अपनाते हैं उसी तरह अनाथालय भी बच्चों को गोद देते समय उनके होने वाले मां–बाप के अच्छी तरह जांच–परख लेते हैं।

पत्नी : प्यार देने के लिए ही तो हम किसी बच्चे को अपनाएंगे न !

दीदीः सही है ! लेकिन अनाथालय भी तो गांरटी चाहता है कि बच्चे के होने वाले मां–बाप बच्चे के हितों की रक्षा कर पाएंगे, उसकी हिफाजत कर पाएंगे।

पत्नी : यह गांरटी किसलिए ?

दीदी : इस दुनिया में बच्चों को बेचने–खरीदनेवाले, उनसे गलत काम करवानेवाले, बंधुआ मजदूर बनाकर बच्चों की जिंदगी खराब करने वाले क्या कम हैं ?

पत्नी : हां, सुना तो मैंने भी है।

दीदीः बच्चे ऐसे बदमाशों के हाथ लग जाएं तो उनकी जिंदगी बर्बाद हो जाती है। इसलिए बच्चों की संस्थाओं को जागरूक रहना पड़ता है।

पत्नी : लेकिन दीदी, अपनी खुद की संतान की तो बात ही अलग है न !

दीदीः फिर वहीं बात! आजकल कई पति–पत्नी केवल एक ही बच्चे को जन्म देना चाहते हैं। दूसरे की जरूरत महसूस होने पर बच्चा गोद ले लेत हैं। अनाथ बच्चे को प्यार देना भी तो एक परम कर्तव्य है न भाभी ! वह बच्चा भी तो तुम्हें प्यार देगा। बच्चे की परवरिश में एक अलग आनंद मिलता है। जन्म देने में जो आंनद है बच्चे को छोटे से बड़ा करने में भी वही आनंद है यह तुम्हें भूलना नहीं चाहिए भाभी !

पत्नी : सच कह रही हो दीदी !

दीदीः भाभी, भैया बाहर जाते समय 'यशोमति मैया से 'गुनगुना रहे थे न!

पत्नी : उनका पसंदीदा गाना है यह।

दीदी : श्रीक भण तो देवकी के पुत्र थे लेकिन उन्हें पाला–पोसा किसने?

पत्नी : मां यशोदा ने।

दीदीः आज भी कोई पूछे कि कृष्ण की माता कौन, तो आंखों के सामने कौन–सी छवि उभरती है?

पत्नी : मां यशोदा की। दीदी, क्या सही मिसाल दी आपने। मैं भले ही देवकी न बन पाई, लेकिन यशोदा जरूर बनकर दिखाऊंगी।

दीदीः जंची न बात !

पत्नी : बच्चों की किसी संस्था या अनाथालय का पता है आपके पास? आप खुद चलेंगी हमारे साथ?

दीदी : हां–हां, क्यों नहीं !

–ज्योति म्हापसेकर

सुझाव : यह नाटिका बिना मंचीय सुविधाओं के प्रस्तुत की जाए, दर्शकों को गोल घेरे में बिठाकर। दर्शक सूत्रधार के जितने करीब होंगे, नाटिका उतनी ही असरदार साबित होगी।